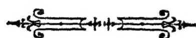
श्रीसुन्दर-ग्रन्थ-माला—रत्न ३

दुर्योधन-वध



लेखक—

जगदीश नारायण तिवारी

प्रकाशक—

जगदीशनारायण तिवारी

११५, हरिसन रोड

कलकत्ता।

पुस्तक मिलने का पता:
साहित्य भवन लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम बार } कृष्ण-जन्माष्टमी, १९८५ { मूल्य ॥)
सुनहली जिल्द १)

प्रकाशक—
जगदीशनारायण तिवारी
११५, हरिसन रोड,
कलकत्ता।



मुद्रक—
किशोरीलाल केडिया
वणिक् प्रेस
१, सरकार लेन,
कलकत्ता।

समर्पण



मित्र-द्वय !

यहां स्थानाभावके कारण आप लोगोंका संक्षिप्त परिचय देना भी असम्भव है। मेरी समझमें परिचय देना भी कोई विशेष महत्व नहीं रखता; क्योंकि मैं लिखकर जो कुछ परिचय देता, उससे कहीं अधिक समाज आप लोगोंसे परिचित है।

आप लोग धनी हैं और धनियोंसे मुझे कुछ घृणा-सी रहती है, फिर भी यह पुष्प आप लोगोंको ही समर्पण करनेका विचार क्यों किया, इसका एक कारण है। वह यह कि आप मुझे प्रेम करते हैं। प्रेम क्यों करते हैं, यह तो आप ही जानते हैं, मैं अपनेमें ऐसा कोई गुण नहीं देखता। आप लोगोंके प्रेमने ही मेरे शुष्क हृदयमें भी प्रेम उत्पन्न कर दिया है। और इस पारस्परिक प्रेमको स्थायी बनाने तथा उसका परिचय देनेके केवल सात्विक अभिप्रायसे ही यह छोटी-सी पुस्तक आप लोगोंको सादर-सप्रेम समर्पित है। आशा है, आप लोग इस तुच्छ भेंटको प्रेम-पूर्वक स्वीकार करेंगे।

—लेखक

प्राक्कथन



'ईश-विनय'की लोक-प्रियतासे उत्साहित होकर मैंने 'श्रीकृष्ण-उपदेश' की रचना की। हिन्दी-प्रेमी पाठकोंने 'श्रीकृष्ण-उपदेश' को अपनाकर जो प्रेम-परिचय दिया है, उसीसे प्रोत्साहित होकर यह छोटी-सी पुस्तक **'दुर्योधन-वध'** लिखनेका प्रयास मैंने किया है। आजकल जब कि ऐसी प्रथा-सी हो गयी है, कि लेखकगण अपने नामके साथ बड़ी-बड़ी उपाधियां लिखकर अपनी योग्यताका परिचय, इसके पूर्व ही कि पाठक उनकी योग्यताका परिचय उनकी लिखी पुस्तकका पाठकर प्राप्त करें, दे डालते हैं; मुझे अपनेमें कविजनोचित प्राकृत संस्कारोंके अभाव और अयोग्यताका परिचय देना—फिर भी जब 'श्रीकृष्ण-उपदेश'की भूमिका-में स्पष्ट शब्दोंमें पूर्ण परिचय दे चुका हूं—उचित प्रतीत नहीं होता। एक-आध बार इच्छा हुई कि हिन्दी-साहित्यके चिर-परिचित उन महारथियोंमेंसे किसीसे, जिनसे नव परिचय प्राप्त करनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त है, इसकी भूमिका लिखाऊं, पर ऐसा करनेमें असमर्थ रहा। सोचता, यदि उन्होंने प्रशंसा कर दी तो आत्मश्लाघा-दोषका अवश्य ही भागी बनना हुआ, यदि कुछ निन्दा लिखी तो पहले ही अपनी छीछालेदर होगी। अतः इसके गुण-दोषके समीक्षण-परीक्षणका भार साहित्य-सरोवरमें निरन्तर स्नान करनेवाले क्षीर-नीरके अभ्यस्त पारखी और अनु-भवी पाठकगणपर ही है।

यदि किसी विद्यार्थी बालक या बालिकाने भी कुछ लाभ उठाया तो निस्सन्देह मैं अपने परिश्रमको सफल समझूंगा।

—लेखक



दुर्योधन-वध

प्रारम्भ

[१]

जय विश्ववन्द्य जगन्नियन्ता ब्रह्म जगदाधारकी।
जिसकी कृपासे चल रही लीला अखिल संसारकी॥
हे विश्वनट नागर गुणागर सौख्यसिन्धु महामते!
हे विश्व-गति-ज्ञाता! विधाता! श्रीपते! मायापते!

[२]

रचते स्वयं लीला नवल, उसको मिटाते आपही।
क्या खेल अद्भुत खेलते हो! चकित है सारी मही॥
यह तो कहो, आनन्द तुमको कौन है मिलता भला।
जब मारते उसको तुम्हारी ही कृपासे जो पला॥

[३]

या मारते यदि हो नहीं, निज पास क्या लेते बुला ?
कह दो रहस्य कृपानिधे ! अपराध मेरे सब भुला ॥
तुमने महाभारत रचाया क्या समझकर यह कहो ।
क्या वीरशून्या ही बनाना था महीको यों अहो ! ॥

[४]

क्या शोभती हो वीरशून्या वीरभोग्या यह मही ।
कह दो गये कहं वीर पाण्डव और कौरवगण सही ॥
आचार्य्यसुत,आचार्य्य,भीष्माचार्य्य,सात्यकि,शल्यकी ।
अभिमन्यु, कृतवर्मा, जयद्रथ, कर्णके प्राबल्यकी, ॥

[५]

आती कथा जब याद, हम हैं हाथ मलते शोकसे ।
हा दैव ! कैसे वीर आ-आ फिर गये इस लोकसे ॥
कह दो भला होगा भला क्या पाठको ! पर शोकसे ।
कल्याण होता विश्वका क्या कापुरुष डरपोकसे ? ॥

[६]

पूर्वज हमारे वीर थे, हम भीरु पग-पग सिद्ध हैं ।
वे कार्य्य-शूर प्रसिद्ध थे, हम वचन-शूर प्रसिद्ध हैं ॥
सन्तान हैं हम भी उन्हींकी ठोकरें हा ! खा रहे ।
वे थे जगद्गुरु शिष्य, हाय ! अयोग्य हम कहला रहे ॥

[७]

जिस जातिकी शुभ कीर्तिसे भूषित हुई सारी मही।
जिस जातिपर प्रभुकी सदैव कृपा असीम बनी रही॥
जिस जातिका इतिहास मानव-जातिका इतिहास है।
जिसकी अलौकिक ज्योतिसे जगमगित जगदाकाश है*॥

[८]

धनसे धनी बलसे बली, जो गर्व-गौरव-पूर्ण थी।
जो शस्त्र-शास्त्र-कला-कुशल थी, शक्तिसे परिपूर्ण थी॥
गाती ऋचायें वेदकी थी, स्मृति-वचन थी मानती।
गो-विप्र-रक्षा, देश-रक्षा धर्म जो थी जानती॥

[९]

संसारकी सब जातियोंमें अग्रजा जो सिद्ध है।
आये अजन्मा जन्म ले यह लोक-वेद प्रसिद्ध है॥
उसका हुआ हा! आज क्यों इस भांति भीषण ह्रास है।
क्यों ठोकरें खाती तथा सहती महा उपहास है॥

---

* मेरे एक मित्रने इसपर आक्षेप किया था। किन्तु ज्ञान-विज्ञानके-सर्वोच्च शिखरपर आसीन आधुनिक जगतकी गर्वीली जातियोंके समस्त ज्ञान-भाण्डारका बीजाधार कपिल-कणाद-पतञ्जलि आदि ऋषियोंद्वारा आरोपित ज्ञान-शिला ही है, यह मेरी ध्रुवधारणा है।

[१०]

क्या क्या कहें जो था असम्भव आज वह सम्भव हुआ।
दुर्दैवके दुष्कृत्यका वीभत्स कटु अनुभव हुआ॥
ऐ हिन्दुओ! अब भी संभल जाओ, कहा यह मान लो।
गृह-कलहके कारण महाभारत मचा यह जान लो॥

[११]

पर हो गया सो हो गया, अब भी जरा चेतो सही।
निज पूर्वजोंकी कीर्ति अमर करो अभी जो बच रही॥
हा! आज पग-पगपर तुम्हारा हो रहा अपमान है।
पर चाल बेढंगी वही है, कुछ न तुमको ध्यान है॥

[१२]

तुम नामके बाईस कोटि न कामके बाईस हो।
हो गैरसे तिरसठ, स्वजनसे किन्तु तुम छत्तीस हो॥
"हम जैन हैं, तुम बौद्ध, वह ब्रह्मो तथा यह आर्य्य है"।
यह कह झगड़ना ही तुम्हारा रह गया बस कार्य्य है॥

[१३]

इस व्यर्थके गृह-कलहसे ही जाति मरणासन्न है।
तुम दैन्य-ग्रस्त हुए, विरोधी दल अतीव प्रसन्न है॥
अन्यान्य जगकी जातियां जादू नहीं हैं जानती।
निज सङ्गठन रखती सुदृढ़ हैं नेह-नाता मानती॥

[१४]

तुम सङ्गठन कर लो, स्वतन्त्र बनो, न दुर्गति-ग्रस्त हो।
जिससे तुम्हारे पूर्वजोंका कीर्तिचन्द्र न अस्त हो॥
अब भी न चेते तो समझ लो सर्वनाश समीप है।
बुझ जायगा अब जातिका जो टिमटिमाता दीप है॥

[१५]

पूवज हमारे हो गये समराग्निमें स्वाहा सही।
है आज उनके नामसे पर धन्य क्यों भारत-मही॥
है एक गूढ़ रहस्य इसमें पाठको! सोचो हिये।
"जबतक जिये वे प्रज्वलित होकर जिये या चल दिये॥"

[१६]

धन-धान्य-पत्नी-पुत्र सब वे मानहित थे त्यागते।
जब विश्व सारा सुप्त था हो प्रज्वलित थे जागते॥
है भाइयो! क्षण मात्र भी हो प्रज्वलित जीना भला।
है सुप्त जीवनसे कहीं बढ़कर भला देना गला॥

[१७]

है मान जबतक प्राण तबतक यह नहीं तो वह नहीं।
सिद्धान्त उनका था नहीं, जो दीखता हममें कहीं॥
उनके चरित हम भूलते हैं जा रहे, आओ पढ़ें।
उसपर करें आचरण, जीवन-युद्धमें आगे बढ़ें॥

प्रथम परिच्छेद

[१]

जब भीष्म द्रोणाचार्य्यने धृतराष्ट्रको समझा दिया।
धृतराष्ट्रने तब राज्यका अनुकूल बंटवारा किया॥
जब राज्य पाण्डव पा गये, झगड़ा नहीं कोई रहा।
मयको युधिष्ठिरने सभाघर तब बनानेको कहा॥

[२]

मयने सभा-मंडप बनाया स्फटिकमणि-रत्नादिसे।
थी हो रही अमरावती भी देखकर लज्जित जिसे॥
कह कौन सकता है भला जो थी बनी शोभा वहां।
थे धर्म्मराज चला रहे जब धर्म्म-राज स्वयं जहां॥

[३]

मयने सभाको जब सुसज्जित कर दिया सब साजसे।
आकर कहा सादर सहर्ष सप्रेम पाण्डवराजसे॥
"राजन्! सभा अब बन चुकी उसको सुशोभित कीजिये।
है धर्मसिंहासन बनाया देख उसको लीजिये॥"

[४]

तब देश-देशोंसे बुलाकर ब्राह्मणोंको प्रेमसे।
फल-फूल-माला-वसन-भोजन साथ लेकर नेमसे॥
आये सभामें बन्धुओंके साथ नृप हर्षित हुए।
फिर देखकर शोभा सभाकी जगमगित विस्मित हुए॥

[५]

सब विप्र वेदोच्चार मंगल-पाठ शुभ करने लगे।
पूजा स्वयं करने लगे नृप, प्रेम-रंगमें थे रंगे॥
देखा सबोंने घूम-घूम सभा-भवनको चावसे।
सब अति प्रसन्न हुए सुसज्जित लखि उसे सब भावसे॥

[६]

था राजसिंहासन सभाके मध्यमें सुन्दर सजा।
पूर्णेन्दु जिसको देख करके आप जाता था लजा॥
उसपर स्वयं राजा युधिष्ठिर शीघ्र आ बैठे वहां।
शोभा भला अन्यत्र ऐसी दीखती क्योंकर कहां?॥

[७]

तत्काल ही देवर्षि नारद आ गये संयोगसे।
था दीप्त मुख-मण्डल हुआ तप-तेज-साधन-योगसे॥
अति प्रेमसे सादर सुस्वागत हो खड़े सबने किया।
देवर्षिने उपदेश पाण्डवराजको सुन्दर दिया॥

[८]

चर्चा सभाकी चल रही थी जो, वही फिर छिड़ गयी।
मुनिराज भी विस्मित हुए रचना सभाकी लखि नयी॥
यम-वरुण-ब्रह्मा-इन्द्रके दरबारकी वार्ता भली।
सुरलोककी सुन्दर सभाओंकी सुखद चर्चा चली॥

[९]

चर्चा चली फिर सत्यवादी हरिश्चन्द्र नरेशकी।
सुनकर जिसे चिन्ता न रहती भवजनित दुख-क्लेशकी॥
पूछा युधिष्ठिरने तुरत मुनिराजसे अति चावसे।
"ऐसे प्रतापी नृप हुए किस पुण्य-पुञ्ज-प्रभावसे?"

[१०]

"था राजसूय सुयज्ञ उन्होंने किया सुन्दर महा।
नृप थे प्रजाप्रिय पुण्यशाली" यों तुरत मुनिने कहा॥
सुनकर युधिष्ठिरने विचारा क्यों न वह हम भी करें।
निज पूर्वजों द्वारा प्रदर्शित मार्ग अवलम्बन करें॥

[११]

जिस मार्गपर चलते महाजन मार्ग शुभ फलप्रद वही।
अनुसरण उसका चाहिये करना सभीको शीघ्र ही॥
फिर बन्धुओंसे ली सलाह, सहर्ष सब सहमत हुए।
हर्षित हुए सुन मित्र-मंत्री और सेवक टहलुए॥

[१२]

बिन राजनीति-निपुण सहायक कृष्णकी सम्मति लिये ।
सोचा न ऐसा कार्य्य मुझको आप करना चाहिये ॥
तत्काल ही श्रीकृष्णको रथ भेज बुलवा ही लिया ।
फिर निज मनोगत भाव उनसे विनयपूर्वक कह दिया ॥

[१३]

वे सुन हुए सहमत स्वगत सब भाव उनसे कह दिये ।
"शुभ कार्य्य राजन्! यथासम्भव शीघ्र करना चाहिये ॥
धन-धर्म-जन-बल-सैन्य-संयुत हो प्रतापी तुम सही ।
इस कार्य्यमें बाधा बड़ी पर एक मुझको दिख रही ॥

[१४]

है मगध-नृप ऐसा प्रतापी जरासन्ध महाबली ।
रहता मचाया नित्य नृपगण मध्य जो अति खलबली ॥
आतङ्क प्रबल प्रताप उसका छा रहा चहुं ओर है ।
भयकी घटा सब यादवोंपर छा रही घनघोर है ॥

[१५]

मैं यादवोंके साथ रहता द्वारकामें भागकर ।
शिशुपाल सेनापति हुआ है आप जिससे हारकर ॥
जबतक नहीं उस नीचका सब गर्व-गौरव चूर्ण हो ।
आशा मुझे तबतक नहीं आशा तुम्हारी पूर्ण हो ॥"

[१६]

यह सुन युधिष्ठरने कहा, "जब आप हैं भय मानते।
तब क्या कहें कहिये, हमारी शक्ति तो हैं जानते॥"
फिर भीम बोले,"निर्बलोंके राम रक्षक हैं सदा।
पुरुषार्थ-पौरुषसे पुरुष हैं पार करते आपदा॥

[१७]

निरुपाय उद्यमहीन होकर बैठना ही पाप है।
उत्साह-कौशलसे विजय मिलती, न लगता ताप है॥
दुर्दण्ड दानव-दैत्य अत्याचार यों करते रहें।
हम सब दबी बिल्ली बने चुपचाप हा! सहते रहें॥

[१८]

तो पार्थका गाण्डीव किस दिन काम आयेगा कहो।
हो युद्ध-हित तैयार अशरणशरणका आश्रय गहो॥
दुर्दण्ड उस मगधेशका भय मैं नहीं हूं मानता।
निज बाहुबलको भी भली विधि कृष्ण हूं पहचानता॥"

[१९]

फिर पार्थ बोले,"आर्य्य! साधन दीखते अनुकूल हैं।
धन-जन-विभव-बल हैं यदपि दिन दीखते प्रतिकूल हैं॥"
अन्यायके प्रतिकार-हित सहमत सभी जब हो गये।
श्रीकृष्ण अति हर्षित हुए सोचे उपाय नये नये॥

[२०]

जब पापियोंके पापका होता घड़ा भरपूर है।
तब निर्बलोंसे भी सहज ही शीघ्र होता चूर है॥
यों भाइयोंका देख साहस नृप हुए हर्षित महा।
श्रीकृष्णपर सब भार दे सब कार्य्य करनेको कहा॥

[२१]

श्रीपार्थ भीम महाबली सँग हो लिये विश्वेशके।
हर्षित त्रिदेव चले हटाने ताप त्रय मगधेशके॥
ये ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंके वेशमें आये वहां।
नृप-भवनमें उपवासकर मगधेश बैठा था जहां॥

[२२]

सत्कार समुचित हो खड़ा मगधेशने इनका किया।
फल-फूल-भोजन किन्तु अस्वीकार इन्होंने किया॥
क्या चूक भगवन्! हो गयी? यह प्रश्न झट उसने किया।
"ये सब अभी हैं मौन" यों श्रीकृष्णने उत्तर दिया॥

[२३]

"यदि अर्द्धरात्रि व्यतीत होनेपर पुनः आओ वहां।
इस रात्रिको हम सब बितायेंगे ठहर करके जहां॥
तो बात ये फिर कर सकेंगे नृप! यथोचित रीतिसे।
बतलायँगे पूजा तुम्हारी ली नहीं किस नीतिसे॥"

[२४]

नृप यज्ञशालामें ठहरनेके लिये कह चल दिया।
फिर अर्द्धरात्रि व्यतीत होते कष्ट आनेका किया॥
जब पुनः पूजा ली न उन्होंने, चकित हो यों कहा।
"हे विप्रगण! क्यों हो अतिथि करते अनर्थ भला महा?

[२५]

हैं आप स्नातक ब्राह्मणोंके वेशमें यद्यपि सभी।
पर खड्गधारी क्षत्रियोंकी बाहु छिप सकती कभी?॥
हैं कौन? क्या षड्यंत्रकारी शत्रु? ब्राह्मण-वेशमें?।
किस कामसे आये? कहांसे?—इस हमारे देशमें॥"

[२६]

श्रीकृष्णने उत्तर दिया, "हम हैं अतिथि यद्यपि यहाँ।
पर वीर क्षत्रिय शत्रुकी पूजा भला लेते कहां?॥
भुज देखकर अनुमान जो तुमने किया वह सत्य है।
हैं शत्रु क्षत्रिय वीर हम, यह-विप्र-वेश असत्य है॥"

[२७]

यह सुन नहीं मगधेशके आश्चर्य्यकी सीमा रही।
"क्या शत्रुता है आप-मुझमें कुछ प्रभो! कहिये सही॥"
उत्तर दिया श्रीकृष्णने, "क्या होशमें तुम हो नहीं।
रहते छिपे हैं शत्रु-मित्र भला बताओ तो कहीं॥

[२८]

जब हे नृपाधम ! हैं तुम्हारे वंशके नृप रो रहे।
तो कौन ऐसा है सगा जो मित्र फिर तुमको कहे ॥
यह याद रक्खो वंश-द्रोहीको न मिलता मित्र है।
देखो तुम्हारा आज क्षत्रिय-वंश सकल अमित्र है ॥

[२९]

'सबसे बली तुम क्षत्रियोंमें हो' तुम्हारा ध्यान है।
यह भूल, मिथ्या गर्व, एवं भ्रम तथा अज्ञान है ॥
अभिमान अरु अज्ञानसे मिलता सदा ही क्लेश है।
निर्द्वन्द्व हो विचरो, युधिष्ठिरका यही संदेश है ॥

[३०]

बन्दी बने जो सड़ रहे नृप बस उन्हें अब छोड़ दो।
अन्याय-अत्याचार-पापाचारसे मुंह मोड़ दो ॥
स्वीकार शीघ्र अधीनता राजा युधिष्ठिरकी करो।
या युद्ध कर वर वीर क्षत्रिय-धर्मका पालन करो ॥"

[३१]

मगधेश बोला क्षत्रियोचित गर्वसे ललकारकर।
'मैं युद्ध -हित तैयार हूं, भागूं न हिम्मत हारकर ॥
राजा युधिष्ठिर या किसी नृपसे न डरता लेश हूं।
है जन्म क्षत्रियवंशमें, युद्धेच्छु सदृश सुरेश हूं ॥

[३२]

तुम तीन हो, मैं हूं अकेला; पर न चिन्ता-लेश है।
रण-विमुख क्षत्रिय धर्मच्युत हो पतित पाता क्लेश है॥
आगे बढ़ो, आओ लड़ो, बस,अब विलम्ब करो नहीं।
हो जाय निपटारा अभी तुम हो बड़े या मैं यहीं॥"

[३३]

श्रीकृष्णने ललकार सुन यह हो प्रफुल्लित यों कहा।
"कैसी कही यह बात तुमने वीर! वीरोचित अहा!॥
तुम युद्ध किसके साथ करना चाहते राजन्! कहो।
अन्याय-युद्ध न चाहते हम, न्यायपर तुम भी रहो॥"

[३४]

देखीं भुजायें भीमकर्मा भीमकी लम्बी बड़ी।
युग जानु खम्भे सदृश थे, तन वज्रवत्, छाती कड़ी॥
गजराज उस मगधेशने इस सिंहपाण्डववीरको।
झट चुन लिया युद्धार्थ इस रणधीरको वर वीरको॥

[३५]

ललकारकर बोला कड़कके "अब लड़ो,हो उठ खड़े।"
झट भीम भी खम ठोक उसपर टूट निर्दय हो पड़े॥
वे मल्ल दोनों युद्ध होकर क्रुद्ध अति करने लगे।
बस,दांव-पेंच-प्रहार-गुत्थम-गुत्थ फिर होने लगे॥

[३६]

थे गर्जते, दे मारते, धरि पटकते फिर पीसते।
थे :पकड़ बांह घसीटते, इत खींचते उत मींसते ॥
फिर मुण्ड-मुण्ड लगे लड़ाने, जोरसे लड़ने लगे।
आघात-प्रत्याघात शीघ्र प्रचण्ड ये करने लगे॥

[३७]

यह बाहु-युद्ध प्रचण्ड उस दिन-रात होता ही रहा।
फिर कृष्णने संकेत करके भीमसे ऐसा कहा॥
"अरि थकितको अब अत्यधिक पीड़ा न देनी चाहिये।
अब यथा-सम्भव शीघ्र उसका अन्त करना चाहिये॥"

[३८]

सुन भीमने मगधेशको पटका तुरत ही जोरसे।
तत्क्षण मरा वह, मच गया कुहराम चारों ओरसे॥
अन्याय-पापाचार तो चिरकालतक चलता नहीं।
क्या कर प्रजा-पीड़न भला है राज्य टिक सकता कहीं?

[३९]

अन्याय-अत्याचारका मगधेशको फल मिल गया।
सर्वेश दीनदयालुतकने भी दिखायी नहिं दया॥
रहता अधर्म जहां पराजय भी वहीं रहती सदा।
जहं धर्म रहता है वहीं रहती विजयश्री सर्वदा॥

[४०]

परमेशकी महती कृपासे प्राप्त हो प्रभुता जिसे ॥
उसको नहीं अभिमान करना चाहिये शुभ नीतिसे ।
पा शक्ति होना शान्त वीरोंका सुपावन धर्म है ।
अन्याय करना सबल होय नराधमोंका कर्म है ॥

[४१]

अविलम्ब तीनों वीर कारागारमें पहुंचे वहां ।
यम-यातनायें भोगते थे नृपति बन्दी बन जहां ॥
झट मुक्त उन सबको किया, वे प्रार्थना करने लगे ।
"हे कृष्ण ! केवल आप ही हैं हम सबोंके बल सगे ॥

[४२]

उद्धार घोर विपत्तिसे कर जो किया उपकार है ।
उसका न प्रत्युपकार सम्भव है; बना ऋण-भार है ॥
बस, आजसे यह जानिये, हैं आप प्रभु, हम दास हैं ।
हैं आपके ही जो हमारे विभव-धन-जन पास हैं ॥"

[४३]

तब कृष्ण बोले,"हे नृपतिगण ! है मुझे कहना यही ।
तुम मान लो प्रभुता सभी राजा युधिष्ठिरकी सही ॥
वे चाहते बनना सखे ! नर-नाथसे नृप-नाथ हैं ।
तुम सब बनो उनके सहायक, हम तुम्हारे साथ हैं ॥

[४४]

तब पास आया कृष्णके मगधेश-सुत व्याकुल महा।
श्रीकृष्णने मगधेश उसको ही बना उससे कहा॥
"धीरज धरो, निर्भय रहो, सब विधि प्रजा-रक्षण करो।
हो पार सकुशल राजसूय सुयत्न कुछ इसका करो॥"

[४५]

फिर कृष्ण-पाण्डववीर खाण्डवप्रस्थ आ पहुंचे वहां।
थे नृप युधिष्ठिर आप चिन्तातुर हुए बैठे जहां॥
मगधेशकी फिर मृत्युका सम्वाद शुभ उनको दिया।
भुजबल-पराक्रम भीमका श्रीकृष्णने वर्णन किया॥

[४६]

सुन नृप हुए हर्षित, बड़ाई कृष्णकी करने लगे।
बहु धन्यवाद दिये उन्हें कह-कह वचन अमृत-पगे॥
प्रेमाश्रु-पूरित दृष्टि, गद्गद्-कण्ठ, प्रेमातुर हुए।
पुनि-पुनि मिले नृप भीम-अर्जुनसे महा हर्षित हुए॥

[४७]

निज पुर पधारे कृष्ण, शुभ यज्ञार्थ सम्मति दे गये।
बाधा न शेष रही, उपाय उचित उन्हें बतला गये॥
होने लगीं तैयारियां, चहुं ओर छाया हर्ष था।
आमोद और प्रमोद था, उत्साह था, उत्कर्ष था॥

[४८]

यज्ञार्थ इच्छित अर्थ-संग्रह-अर्थ दिग्विजयार्थ भी।
निकले चतुर्दिश बन्धु चारों राज्य-विस्तारार्थ भी॥
सहदेव दक्षिण, भीम पूरब, पार्थ उत्तरको गये।
बहुविपुल बलधारी नकुल दलबलसहित पश्चिम गये॥

[४६]

रण-कुशल कोशलराज, काशीराज, नृप शिशुपालने।
पाञ्चाल-मथुरा-मत्स्य-कच्छ-कलिङ्गके भूपालने॥
भगदत्त और वृहन्त नृपने हार अपनी मान ली।
बहु विपुल बलशाली वृहद्बलने पराजय मान ली॥

[५०]

जिसकी कृपासे विष सुधा होता, तरणि पाहन अहा!
गज-भार कीरी-भार होता, अनल जल शीतल महा॥
वह राजराजेश्वर स्वयं जिसकी रची यह सृष्टि है।
जो दीनपर रहता द्रवित, रखता दयाकी दृष्टि है॥

[५१]

उस विश्व-विभु जगदीशकी जब पाण्डवोंपर थी कृपा।
रखता कहां धन-रत्न कोई फिर भला उनसे छिपा॥
ले रत्न-राशि अनन्त खाण्डवप्रस्थ पाण्डव आ गये।
जो चाहते थे यज्ञका सामान इच्छित पा गये॥

[५२]

ले कृष्ण भी धन-रत्न-सेना आ गये तत्काल ही।
मानों युधिष्ठिरके गलेमें पड़ गयी जयमाल ही॥
नृपने कहा, "सौभाग्यसे जब कृष्ण आये हैं यहां।
तो यज्ञ होगा पूर्ण, जायेगी विजय-श्री फिर कहां॥"

[५३]

सहदेव एवं मन्त्रियोंसे बात यह नृपने कही।
"ब्राह्मण कहें यज्ञार्थ जो सामान लाओ शीघ्र ही॥"
सहदेव बोले नम्रतापूर्वक, "प्रभो सुन लीजिये।
सामान प्रस्तुत हैं सभी, चिन्ता न इसकी कीजिये॥"

[५४]

इस यज्ञके ऋषिदेव वेद-व्यास ही ब्रह्मा बने।
वसु-पुत्र धौम्य महर्षि याज्ञ-वल्क्य ही होता बने॥
फिर स्वस्तिवाचन भी हुआ, सङ्कल्प-विधि पूरी हुई।
सब शास्त्र-विधि-अनुसार पूजा यज्ञशालाकी हुई॥

[५५]

सहदेवसे नृपने कहा, "भेजो निमन्त्रण सब कहीं।
वर विप्र, क्षत्रिय, वैश्य आवें, शूद्रतक छूटें नहीं॥"
चहुं ओर योग्य सुसभ्य दूत सुदूरतक भेजे गये।
शुभ यज्ञके सम्वाद सारे देशमें फैले नये॥

[५६]

आचार्य्य त्रय, धृतराष्ट्र-सुत, धृतराष्ट्रकी टोली भली।
काश्मीर-सिङ्घल-नृप, जयद्रथ, विदुर,द्रुपद महाबली॥
बलराम, सबल विराटराज, पराक्रमी शिशुपाल भो।
इस पुण्य अवसरपर सभी आये प्रवर भूपाल भी॥

[५७]

सम्मान आगत नृपतिगणका प्रेमसे नृपने किया।
सबको सुसज्जित नृपजनोचित सुखद सुन्दर घर दिया॥
सबको बुलाकर प्रेमसे फिर नृप युधिष्ठिरने कहा।
"साहाय्य मेरा कीजिये, यह कार्य्य गुरुतर है महा॥"

[५८]

फिर अलग कार्य्य-विभाग नृपगणने यथोचित कर दिया।
आचार्य्यसुतने विप्र-सेवा-कार्य्य शुभ अपने लिया॥
आगत नृपतिगणका सुसेवा-भार सञ्जयने लिया।
उपहार लेनेका सुभार ग्रहण सुयोधनने किया॥

[५९]

सुप्रसन्न दुःशासन हुआ भाण्डार-भोजन-भार ले।
धृतराष्ट्र बूढ़े लोग मालिककी तरह अधिकार ले॥
सबका निरीक्षण-भार ही गुरु-भीष्मके ऊपर रहा।
पर कृष्णपर सौंपा गया जो भार था अद्भुत महा॥

[६०]

था विप्र-पांव-पखारनेका भार उन्होंने लिया।
हो विश्वपति यों विप्र-पद्का मान उन्होंने किया॥
इस हेतु ही बूढ़े-बड़े ऋषिदेव-नृप सब थे जहां।
सबसे बड़ा माना नृपतिने अर्घ दे उनको वहां॥

[६१]

शिशुपालको यह कृष्णकी पूजा नहीं अच्छी लगी।
अच्छी भला लगती ; उसे क्यों थी बड़ी दुर्मति जगी॥
दुर्वचन कहकर कृष्णका अपमान बहु उसने किया।
सिर कृष्णने उसका सुदर्शनचक्रसे खण्डित किया॥

[६२]

फिर कर क्रिया अन्त्येष्टि उसकी यज्ञमें सब लग गये।
पूरण हुआ शुभ यज्ञ, बाधा-विघ्न सारे टल गये॥
फिर कर गये प्रस्थान निज-निज देशको नृपगण सभी।
केवल सभाको देखने थे शकुनि दुर्योधन अभी॥



द्वितीय अध्याय

[१]

थे शकुनि दुर्योधन चकित शोभा सभाकी देखकर।
थे थकित होते सुकवि भी जिसका ललित उल्लेखकर॥
जल है कि थल, थल है कि जल, दीवार है या द्वार है।
जिस ओरसे जाते वहीं आते, न पाते पार हैं॥

[२]

जलमें कहीं गिरता सुयोधन, चोट खाता था कहीं।
भीमादि पाण्डव हंस रहे थे, पर युधिष्ठिर नृप नहीं॥
यह पाण्डवोंका हास्य दुस्सह था सुयोधनके लिये।
पर सब सुनी कर अनसुनी हृत्पट्टपर ही लिख लिये॥

[३]

सुर-शक्ति-निर्मित देवदुर्लभ है यही क्या सुरपुरी ?।
या दानवों-द्वारा रचित-विरचित यही मायापुरी ?॥
आश्चर्य्यका कुछ भी सुयोधनके न पारावार था।
होता भला यों क्यों न, मय-कौशल अगम्य अपार था॥

[४]

यह दृश्य देख चला सुयोधन श्वशुर मामा सङ्ग थे।
पर था बहुत चिन्तित न उसके पूर्ववत् मुखरङ्ग थे॥
यह पाण्डवोंका अतुल बल-वैभव न उसको सह्य था।
"ऐसी सभा! इतना प्रभाव!" विचार दुःख असह्य था॥

[५]

यों देखकर मुद्रा सुयोधनकी शकुनि शङ्कित हुआ।
पूछा, "कहो, क्यों है तुम्हारा चित्त यों चिन्तित हुआ॥"
उत्तर सुयोधनने दिया, "मामा कहूं क्या निज कथा।
होगे दुखित तुम भी बहुत मेरी सुनोगे जब व्यथा॥

[६]

आसिन्धु पृथ्वीपर युधिष्ठिरका हुआ अधिकार है।
धन-मान-बल-वैभव-सुयशका जो हुआ विस्तार है॥
वह देखकर मैं जल रहा हूं हाय! चिन्ता-ज्वालसे।
दूभर हुआ जीना, ग्रसित हूं द्वेषरूपी व्यालसे॥

[७]

हैं बन्धु पाण्डव, पर उन्हें मैं शत्रु ही हूं जानता।
वैरी बढ़े मुझसे! इसे अपमान अपना मानता॥
जबतक युधिष्ठिरके पतनका यतन कुछ कर लूँ नहीं।
तबतक मुझे तो चैन मामा! है न मिल सकता कहीं॥"

[८]

यह सुन शकुनिने सान्त्वना देते सुयोधनसे कहा।
"धीरज धरो, यों व्यर्थ चिन्ता कर रहे हो क्यों महा ?"
तुमको कमी क्या है, तुम्हें भी राज्य आधा प्राप्त ।
आतङ्क-भय चहुंदिशि तुम्हारा देशभरमें व्याप्त है॥

[९]

तुम भी प्रतापी हो, तुम्हारी शक्ति प्रबल प्रचण्ड है।
है कांपता भयसे तुम्हारे देश क्या भूखण्ड है॥
तुम भी सहज ही विश्व-विजयी बन न सकते क्या कहो।
करके प्रयत्न सफल-मनोरथ हो, सदा सुखसे रहो॥"

[१०]

बोला सुयोधन,"तात! तुम यदि हो गये सहमत कहीं।
तो पाण्डवोंको जीतना मेरे लिये दुष्कर नहीं॥
तब यह सभा-धन-राज्य सारा,हाथ निज लग जायंगे।
राजे सभी करबद्ध सम्मुख आप मेरे आयंगे॥"

[११]

बोला शकुनि "भ्रमपूर्ण घातक यह तुम्हारा ध्यान है।
राजन्! न तुमको पाण्डवोंकी शक्तिका कुछ ज्ञान है॥
मित्रों सहित यदि पांच पाण्डव हों समर-संस्थित कहीं।
सुरगण-सुरेन्द्र कदापि उनको जीत सकते हैं नहीं॥

[१२]

अतएव तुमको काम करना चाहिये कुछ नीतिसे।
हो पाण्डवोंपर विजय दुर्योधन! चलो उस रीतिसे॥"
बोला सुयोधन, "जो कहोगे हम करेंगे सब वही।
कोई विजय-प्रद मार्ग निश्चय कर कहो भी तो सही॥"

[१३]

तब धूर्त्त उद्धत शकुनि बोला, "एक सुलभ उपाय है।
राजा युधिष्ठिर सङ्ग होवे द्यूत मेरी राय है॥
वे हैं जुआ-प्रेमी बड़े, पर निपुण उसमें हैं नहीं।
हैं हम सभी पक्के जुआरी, निपुणतर उनसे कहीं॥

[१४]

अतएव उनको द्यूत-क्रीड़ा-हित बुलाओ तुम यहां।
फिर हार-पर दो हार उनको, निकल जायेंगे कहां॥
लो राज-पाट-सभा-भवन भी जीत कौशल-चालसे।
देखें भला कैसे निकलते हैं हमारे जालसे॥

[१५]

अनुमति तुम्हें अपने पिताकी प्रथम लेनी चाहिये।
फिर नृप युधिष्ठिरको निमन्त्रण दे बुलाना चाहिये॥"
यों बात करते शकुनि-दुर्योधन नगर निज आ गये।
धृतराष्ट्रको उस यज्ञका वृत्तान्त पूर्ण सुना गये॥

[१६]

धृतराष्ट्रसे बोला शकुनि, "क्या आपको यह ज्ञात है ?
रहते सुयोधन बहुत चिन्तित ! दुःखकी यह बात है ॥"
धृतराष्ट्रने पूछा सुयोधनसे, "कहो क्या बात है ? ।
चिन्ता तुम्हें किस बातकी ? पीला पड़ा क्यों गात है ? ॥

[१७]

है राज-पाट-विभूति-वैभव सब तुम्हारे ही लिये ।
है कौनसी अप्राप्य वस्तु दुखी हुए हो जिस लिये ? ॥"
बोला सुयोधन, "आपने जो कुछ कहा वह है सही ।
पर वस्त्र-भोजनसे रहूं सन्तुष्ट, बात न अब रही ॥

[१८]

सन्तोषसे होता नहीं धन-राज्यका विस्तार है ।
सन्तोष ही अभिवृद्धि-उन्नतिकी प्रखर तलवार है ॥
धारण करे सन्तोष नृप तो राज्य होता नष्ट है ।
धन-जन-विभव-बल खो तुरन्त असह्य पाता कष्ट है ॥

[१९]

बिन क्रोध वैरीपर किये, होता न यश-विस्तार है ।
सुख-भोग-गृहमें लिप्त रहता जो उसे धिक्कार है ॥
धन-राज्य-वैभव नृप युधिष्ठिरका न मुझको सह्य है ।
मणि-जटित मण्डप ! हाय वह अपमान !! दुःख असह्य है ॥

[२०]

जबतक न उसकी राजलक्ष्मी हरण कर लाऊं यहां।
तबतक पिताजी! विश्वमें मुझको मिलेगा सुख कहां॥"
बोला शकुनि,"हे वीर! यह कुछ भी असम्भव है नहीं।
राजा युधिष्ठिरको बुलाओ द्यूत-क्रीड़ा-हित यहीं॥

[२१]

वे हैं जुआ-प्रेमी बड़े, इस काममें मैं सिद्ध हूं।
शतरञ्जका शह मात करनेमें सुदक्ष प्रसिद्ध हूं॥
धन-राज्य उनका जीत लूंगा मैं तुम्हारे ही लिये।
हर बार दूंगा हार, होगा कुछ नहीं उनके किये॥"

[२२]

यह सुन तुरत बोला सुयोधन,"वाह, कैसी युक्ति है!
प्रस्ताव उत्तम है पिता, इसमें न कुछ अत्युक्ति है॥
कृपया विलम्ब करें नहीं, आज्ञा पिताजी! दीजिये।
फहरा पताका-कीर्त्ति जगदाकाशमें अब लीजिये॥"

[२३]

धृतराष्ट्र बोले,"इस विषयमें विदुरकी क्या राय है।
है ठीक ही यदि वे कहें 'यह ठीक उचित उपाय है'॥
वे नीति-निपुण सुविज्ञ हैं, हित-मन्त्रणा देंगे वहां।
मन्त्री हमारे हैं वही, पूछो बुला उनसे सही॥"

[२४]

बोले सुयोधन "विदुर तो सहमत कभी होंगे नहीं।
वे मीन-मेख बिना निकाले कार्य्य हैं करते नहीं॥
मैं और कुछ कहता नहीं हूं; चाहता केवल यही।
'ऐसा न होगा तो न जीऊंगा' वचन कहता सही॥"

[२५]

'है पुत्र होता प्राणसे भी प्रिय' पुरानी है कथा।
धृतराष्ट्रने स्वीकार कर प्रस्ताव, यह पाली प्रथा॥
तब तो बुलाकर नौकरोंको थे यद्पि चिन्तित महा।
इक रत्न-मण्डित खेलघर सुन्दर बनानेको कहा॥

[२६]

पर विदुरसे पूछे बिना धृतराष्ट्रसे न रहा गया।
उनको बुलाकर सहमते प्रस्ताव यह रक्खा नया॥
सुन यह हुए चिन्तित बहुत बोले,"किया क्या आपने।
ऐसा कराया आपसे किस पूर्व-अर्जित पापने?"

[२७]

धृतराष्ट्र बोले,"विदुर! दुर्योधन नहीं है मानता।
मैं हूं जुआको पाप घोर अनर्थका घर जानता॥
पर विवश हूं, होनी हुए बिन है नहीं रहती कभी।
सुख दुःख-लाभालाभ दैवाधीन हो पाते सभी॥

[२८]

अतएव चिन्ता व्यर्थ तुमको अब न करनी चाहिये ।
जाकर युधिष्ठिरको बुला लाना तुम्हें अब चाहिये ॥"
यद्यपि विदुरकी थी न इच्छा पर स्वयं लाचार थे ।
चलते सदा धृतराष्ट्रके आज्ञा-वचन-अनुसार थे ॥

[२९]

झट आय खाण्डवप्रस्थ पाण्डवराजसे जाकर मिले ।
वे अति प्रसन्न हुए विदुरको देख, धाय गले मिले ॥
पूछा, "चचा, कौरव कुशलपूर्वक भले तो हैं सभी ?
क्या प्रेमपूर्वक याद करते हैं मुझे भाई कभी ? ॥"

[३०]

बोले विदुर, "धृतराष्ट्र, कौरव-बन्धु हैं आनन्दमें ।
सुन सुन तुम्हारी कुशल रहते मग्न परमानन्दमें ॥
धृतराष्ट्रने तुमको बुलाया है, चलोगे क्या कहो ?
न्योता तुम्हें है द्यूत-क्रीड़ा-हित दिया भाई अहो ! ॥"

[३१]

यह सुन युधिष्ठिरने कहा, "है जड़ जुआ अघ-पापकी ।
है युद्धका यह घर महाशय ! राय क्या है आपकी ?"
बोले विदुर, "जो है तुम्हारी राय मेरी राय है ।
धृतराष्ट्र हैं नहिं मानते तो कौन अन्य उपाय है ?"

[३२]

बोले युधिष्ठिर, "क्या कहूं, हूं जानता यह पाप है।
वेश्यागमन-चोरी-जुआसे प्राप्त होता ताप है॥
धृतराष्ट्र रह सकते नहीं बिन पक्ष पुत्रोंका लिये।
जो पुत्र चाहेंगे वही होगा, न कुछ उनके किये॥

[३३]

मैं यदि नहीं चलता, मुझे निर्बल समझ सब जायँगे।
उपहास कर मेरा, मनोरथ निज सफल कर पायँगे॥
यह है नहीं न्योता, चुनौती है, मुझे ललकार है।
यदि भागता, शत वार मेरे धर्मको धिक्कार है॥

[३४]

यह लोक-संग्रह-अर्थ एक अनर्थ करना इष्ट है।
उपहास पर पग-पग मुझे सहना न विदुर! अभीष्ट है॥
आये बुलाने आप हैं, फिर भी चलूं यदि मैं नहीं।
तो यह जुआसे भी महान अनर्थ हो बढ़कर कहीं॥

[३५]

अतएव मैं तैयार हूं अब साथ चलनेके लिये।"
ले द्रौपदीको साथ पाण्डव हस्तिनापुर चल दिये॥
वे हस्तिनापुर आ मिले धृतराष्ट्रसे अति प्रेमसे।
कृप-भीष्म-द्रोण-स्वगुरुजनोंसे जा मिले अति नेमसे॥

[३६]

कौरव प्रसन्न हुए मनोहर पाण्डवोंको देखकर।
धृतराष्ट्रकी बहुवें प्रसन्न द्रुपदसुताको पेखकर ॥
फिर स्नान-भोजन कर शयन सबने किया सुख-शान्तिसे।
प्रातः उठे तो मुक्त थे वे मार्गके श्रम-श्रान्तिसे ॥

[३७]

वे खेलमण्डपमें गये थे नृपतिगण बैठे जहां।
सबसे यथोचित प्रेम-वन्दन कर लिये आसन वहां ॥
बोला शकुनि तब नृप युधिष्ठरसे,"यहां अब आइये।
हो खेल अब आरम्भ, भ्रम-सङ्कोच-भेद भगाइये ॥"

[३८]

अविलम्ब ताड़ गये युधिष्ठिर शकुनिका जो भाव था।
शठ शकुनि शठताका लगाना चाहता जो दांव था ॥
बोले युधिष्ठिर, "खेलमें भी कपट करना पाप है।
जो कपटसे धन प्राप्त होता सुख न देता ताप है ॥

[३९]

अरिको हरानेमें कपटसे क्या कहो है शूरता।
क्या क्षत्रियोचित कर्म ? या है धूर्त्तता या क्रूरता ?॥"
बोला शकुनि "क्या आप मुझसे हैं अभीसे डर रहे।
जो वचन विन सोचे-विचारे आपने ऐसे कहे ?"

[४०]

बोले युधिष्ठिर, "प्राप्त होवे सम्पदा या आपदा।
है जब वही होता सदा जो भाग्यमें होता बदा॥
तो आज खेलेंगे जुआ हम आर्य्य वीर-स्वभाव हैं।
भाई सुयोधन आ लगावें, हम लगाते दांव हैं॥"

[४१]

"बदले हमारे शकुनि खेलेंगे" सुयोधनने कहा।
अप्रिय युधिष्ठिरको लगा प्रस्ताव यह अनुचित महा॥
बोले, "यद्यपि प्रस्ताव यह सब भांति नीति-विरुद्ध है।
स्वीकार ही पर है, भला होना न इसपर क्रुद्ध है॥"

[४२]

आचार्य्य त्रय * विदुरादि नृप धृतराष्ट्रको आगे किये।
आकर लगे सब देखने यह: खेल सबने मन दिये॥
रक्खे गये मणि-रत्न दोनों ओरसे तब दाँवमें।
थे चाहते इक-दूसरेको फाँसना निज दांवमें॥

[४३]

कपटी शकुनिसे नृप युधिष्ठिर पर न पाते पार हैं।
इक बार, दूजी बार, हा! हर बार जाते हार हैं॥
निधि, रत्न-कञ्चन-ढेर गज-रथ-अश्व हार गये सभी।
पर मस्त हो पांसे चलाते जा रहे हैं वे अभी॥

---

* भीष्माचार्य्य, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य।

[४४]

योद्धा, रथी, जब दास-दासी, भवनतक जाता रहा।
चुपचाप विदुर न रह सके, कुरुराजसे तत्क्षण कहा॥
"हा! देखिये, क्या हो रहा राजन्! महान अनिष्ट है।
क्या आपको भी पाण्डवोंका सर्वनाश अभीष्ट है? ॥

[४५]

हैं हो रहे अशकुन, शकुनि शुभ-शकुन-भ्रममें है पड़ा।
प्रति बार पांसा पड़ रहा अनुकूल इससे है अड़ा॥
पर कपट-पांसा यह न केवल पाण्डवोंका फांस है।
यदि देखिये तो फांस यह सबके गलेका पाश है॥

[४६]

हैं बन्धु पाण्डव, आज यद्यपि हो रहे विपरीत हैं।
पर विकट सङ्कट-कालमें निज बन्धु होते मीत हैं॥
दुर्बुद्धि दुर्योधन दुरात्माका दमन अब कीजिये।
अविलम्ब पाण्डवराजको घर लौट जाने दीजिये॥"

[४७]

यह सुन सुयोधनके नहीं कुछ क्रोधकी सीमा रही।
धृतराष्ट्र-विदुर न कह सके कुछ, बात कटु उसने कही॥
क्रम द्यूतका चलता रहा, विजयी शकुनि तो मस्त था।
पर पाण्डवोंका पुण्य होता जा रहा हा! अस्त था॥

[४८]

निज दास-दासी-बन्धु-दारा-के सभी भूषण लिये।
इस बार पाण्डवराजने सब दाँवमें हैं रख दिये॥
इस बार भी पर हार ही! मणि-हार*हार गये सभी।
पर मोह-निद्रा-भङ्गका सुसमय न आया था अभी॥

[४९]

फिर दाँवमें रक्खा नकुल-सहदेवको जो प्राण थे।
धन-राज्य-गौरव-मान-रक्षण-हेतु उनके त्राण थे॥
प्रति बार पांसा पड़ रहा है हा! प्रभो! प्रतिकूल ही।
इस बार तो कर दो कृपा पड़ जाय वह अनुकूल ही॥

[४०]

विधि पूर्वकृत दुर्दैव†दूषणको मिटा सकता सही।
विधि-लिखित-अङ्क ललाट-पटका सिद्ध होता सत्यही॥
उन प्राण-प्रिय निज बन्धुओंको नृपति हार गये हरे!।
आश्चर्य्य क्या है चक्रवर्त्तीको जुआ चौपट करे?॥

---

* द्रौपदीके गलेका हार

† मनुष्य-कृत दुर्दैवदूषणको ब्रह्मा मिटा सकते हैं, पर स्वयं उन्होंने जो कुछ ललाटमें लिख दिया है उसको कौन मिटा सकता है?

[५१]

फिर भीम-अर्जुन बन्धुओंको दाँवपर रख ही दिया।
प्रारब्धने धोखा सदाकी भांति फिर दे ही दिया॥
हो क्षुब्ध रक्खा दाँवपर तब पुनः अपने आपको।
फिर भी हुई हा! हार!! पहुंचे कष्टको परितापको॥

[५२]

फिर भी जुआकी वासना मनसे नहीं उनके गयी।
थे सोचते क्या दांवपर रक्खूँ, न वस्तु बची नयी॥
शुभलक्षिणी, प्रियभाषिणी थी द्रौपदी प्राण-प्रिया।
बस, दाँवपर इस बार उसको कर शुभाशा रख दिया॥

[५३]

इसपर उपस्थित जन सभाके शोक-ग्रस्त हुए सभी।
सन्तप्त अधिक हुए विदुर-कृप-भीष्म एवं द्रोण भी॥
पर कर्ण-दुःशासन-सुयोधन-शकुनि हर्ष-प्रमत्त थे।
धृतराष्ट्र मन-ही-मन हुए गद्गद् विजयपर मस्त थे॥

[५४]

सब कह रहे थे, "क्या युधिष्ठिर हो गये पागल कहो।
धन-राज्य-दारा बन्धु सब कुछ दाँवपर रक्खे अहो!"॥
उत्सुक सभी सविशेष थे, होती विजय किसकी यहां।
पर जीत सकता कौन, था बैठा शकुनि कपटी जहां॥

[५५]

सर्वत्र हाहाकार हलचल मच रही चहुं ओर है।
हैं मौन पाण्डव और कौरव-दल प्रसन्न अथोर है॥
हा देवगण! हा दैव!! तू क्यों पाण्डवोंपर रुष्ट है।
जीता शकुनि अत्यन्त कौरव-दल हुआ सन्तुष्ट है॥

[५६]

फूला समाता था न, दुर्योधन प्रसन्न हुआ महा।
"लाओ यहां तुम द्रौपदीको विदुर!" झट उसने कहा॥
बोले विदुर, "हे मूढ़! तेरा सर्वनाश समीप है।
क्या इष्ट तुझको यों बुझाना दीप्त निजकुल-दीप है॥

[५७]

तू है नहीं सन्तुष्ट लेकर पाण्डवोंका राज्य क्या?।
है जीतनेपर भी नहीं परनारि होती त्याज्य क्या?॥
पामर! न पग पीछे धरेंगे वीर पाण्डव जान ले।
निज प्राणप्यारी द्रौपदी-हित लड़ मरेंगे, मान ले॥

[५८]

अपमान नारीका किया जिसने सवंश मिटा वही।
अतएव दुर्योधन! अभी भी मान ले मेरी कही॥"
उसने कहा "उपदेश देना ही तुम्हारा कार्य्य है।
तुमने दिखाया कार्य्य करनेका नहीं औदार्य्य है॥

[५६]

हे सूतनन्दन ! द्रौपदीको जा बुला लाओ यहां।"
लज्जित हुआ उठकर चला थी द्रौपदी बैठी जहां॥
आ द्रौपदीको कह सुनाया उक्त उस सन्देशको।
चिन्तित हुई, पूछा "पता है हाय! क्या न नरेशको ?॥

[६०]

हे सूतनन्दन! कह भला है क्या पता इसका तुझे।
क्या हार अपनेको नृपतिने दाँवपर रक्खा मुझे ?"
बोला कुमार, "द्रुपदसुते ! योंही किया धर्मेन्द्रने।
रक्खा तुम्हें सर्वस्व निज जब खो दिया भूपेन्द्रने॥"

[६१]

"जा पूछ" बोली द्रौपदी,"क्या था उन्हें अधिकारही।
जब प्रथम अपने आपको हा! थे चुके वे हार ही॥"
लज्जित हुए लौटा सभामें, प्रश्न यह उसने किया।
सबने बड़ाई द्रौपदीकी की, न पर उत्तर दिया॥

[६२]

जल-भुन उठा मदमत्त दुर्योधन, कहा अति क्रुद्ध हो।
"आज्ञानुसार चले हमारे, जा कहो, न विरुद्ध हो॥"
आ सूतनन्दनने कहा, "पापी नहीं वह मानता।
हे राजपुत्रि! चलो, नचाती है उसे अज्ञानता॥

[६३]

जाना तुम्हें होगा सही, फिर देर करना व्यर्थ है।"
सुन द्रौपदी बोली, "बता, कैसा महान अनर्थ है!
बूढ़े-बड़े-विद्वान-वीर-श्वसुर-स्वगुरु क्या मौन हैं?।
क्या पाण्डवोंकी राय है? मुझको बुलाता कौन है?॥

[६४]

अबला अनाथा समझ मुझको दे रहा है वह व्यथा।
मैं राजकन्या, राजमहिषी, राजमाता हूं तथा॥
हा! धर्मसंगत कौरवोंका यह नहीं व्यवहार है।
जा पूछ ले, वे सब कहें जो, वह मुझे स्वीकार है॥

[६५]

जब है हरीच्छा ही यही तो क्या कहूं किससे कहूं।
दुर्दिन पड़े पर है उचित मैं मौन होकर ही रहूं॥"
आ सूतनन्दनने सभामें कह सुनायी यह कथा।
सुन दुष्ट दुर्योधन उठा झल्ला, सक्रोध कहा तथा॥

[६६]

"हे भीरु सूतकुमार, दुःशासन! उठो तुम आपही।
लाओ उसे अब पाण्डवोंका है तुम्हें क्या तापही॥"
झट दुष्ट दुःशासन उठा, जा द्रौपदीसे यों कहा।
"तज लाज शीघ्र चलो सभामें समय और न अब रहा॥

[६७]

भयभीत द्रुपदसुता हुई, दौड़ी, न ठहर सकी वहां।
थी चाहती जाना वहीं, थी सासु गान्धारी जहां॥
पर दौड़ उस निर्लज्जने उसका तुरत पीछा किया।
उसके लटकते केशको धर खींच पीछेसे लिया॥

[६८]

भयभीत अबला बेत-सी थरथर सभय थी कांपती।
कर जोड़ बोली यद्यपि मन-ही-मन उसे थी श्रापती॥
"मैं एकवस्त्रा हूं अभी, कैसे चलूं इस वेशमें ?।
ठहरो, बदल लूं वस्त्र अन्य, मुझे न डालो क्लेशमें॥"

[६९]

वह दुष्ट बोला, "कुछ नहीं मैं चाहता सुनना, सुनो।
आओ, चलो आगे अभी, मनमें न कुछ सोचो-गुनो॥"
वह केश पकड़े खींचते लाया सभाके बीचमें।
वह फंस गयी थी, पापियोंके पापरूपी कीचमें॥

[७०]

थे बाल बिखरे और आधा अङ्ग वस्त्रविहीन था।
वह बिलखती थी विलपती मुख खिन्न और मलीन था॥
क्रोधित भुजङ्गिनि-सी हुई फुफकारती बोली वहां।
रे रे दुरात्मा ! दुष्ट ! गुरुजन हैं यहां लाया कहां ?॥

[७१]

गुरुजन यहां बैठे हमारे हैं सुधीर महाबली ।
जिनके समक्ष सुरेन्द्रकी चलती न एक कभी चली ॥
यों दुर्दशा मेरी करे कैसे हुआ साहस तुझे ?।
निर्लज्ज ! लाज न आ रही इस वेशमें लाया मुझे ? ॥

[७२]

हैं मौन बलशाली नृपति गुरुजन सभी क्या बात है ? ।
मिलजुल सभीने आज क्या मुझपर लगाया घात है ? ॥
हा वीर पतियो ! यह कहो तुमको हुआ क्या आज है ?।
हो मौन यों ! जाती तुम्हारी लाजकी भी लाज है ॥

[७३]

हा ! आज क्षत्रिय-धर्मको धिक्कार बारम्बार है ।
कुल-धर्म होता नष्ट पर होता न कुछ उपचार है ॥
क्या शकुनि ! दुःशासन ! न पाण्डव मौन तोड़ेंगे कभी ?
क्या दुर्दशा होती तुम्हारी देख, देर न है अभी ॥"

[७४]

पत्थरहृदय सुन यह विलाप पसीजता विश्वास है ।
सबका हृदय कुरुकेतु हृदयविहीनके पर पास है ॥
अतएव कुछ बोले न सब ग्रह-ग्रस्तसे भयग्रस्त थे ।
थामे कलेजा दृश्य बैठे देखते थे, त्रस्त थे ॥

[७५]

थे कर्ण-कौरव-शकुनि-दुःशासन प्रसन्न हुए महा।
पर भीमने वर बन्धुसे सक्रोध उग्र वचन कहा॥
"धन-राज्य-रत्नागार हार गये न चिन्ता लेश है।
हम कौरवोंके दास आज बने न इसका क्लेश है॥

[७६]

पर प्रियतमाको क्या समझकर कौरवोंको है दिया।
यह निन्दनीय महा तुम्हारी है हुई अन्तिम क्रिया॥
जीते हमारे प्राणप्यारीकी भला हो यह दशा!
मैं ही अकेला दूर करता कौरवोंका मद-नशा॥

[७७]

यह पापमय अपराध अनुचित है, नहीं क्षन्तव्य है।
क्या धर्मराज! यही तुम्हारा धर्म है—कर्तव्य है?॥
खेला जुआ है जिन करोंसे चाहता हूं तोड़ दूं।
सहदेव! लाओ अग्नि, इनको भस्म करके छोड़ दूं॥"

[७८]

तब पार्थ बोला, "आर्य्य! इसमें दोष किसका है कहो।
सब कर्म कर्माधीन होते हैं, समझ यह चुप रहो॥
हे आर्य्य! धर्म-विरुद्ध करते धर्मराज न कार्य्य हैं।
हैं मौन; पर सब देखते गुरु द्रोण-भीष्माचार्य्य हैं॥

[७९]

इनने किये जो कर्म, क्षत्रिय-धर्मके अनुकूल हैं।
कुछ दोष इनका है नहीं, दिन-भाग्य ही प्रतिकूल हैं ॥
जो कुछ यहां है हो रहा देखो सधैर्य्य, सुनो, सहो।
जो चाहते हैं शत्रु कर्म करो न वह, चुप हो रहो ॥"

[८०]

सुन भीम तो चुप हो गया बोला विकर्ण सरोष हो।
"है द्रौपदी निर्दोष, उसपर व्यर्थ करते रोष हो ॥
फिर द्रौपदी क्या एककी, सब पाण्डवोंकी है प्रिया।
क्या शेष पाण्डव मान लेंगे सब युधिष्ठिरका किया? ॥"

[८१]

सबको लगी प्रिय, बात यह की युक्तियुक्त विकर्णने।
कर पकड़कर उसका कहा सक्रोध तत्क्षण कर्णने ॥
"क्या बालकों-सी बात बढ़कर कर रहे हो, शान्त हो?।
पाण्डव, उपस्थित नृप, सभासद् मौन हैं क्या भ्रान्त हो?

[८२]

जब द्रौपदीको दांवपर रक्खा युधिष्ठिरने तभी।
बोले नहीं क्यों अन्य पाण्डव मौन बैठे थे सभी? ॥
फिर जब गये वे हार, उनका क्या रहा अधिकार है।
है क्या बुरा जब द्रौपदीके साथ यह व्यवहार है? ॥

[८३]

तिय-सुलभ लज्जासे लजाती–एकवस्त्रा–है कहो।
तो पाँचपति करते लजायी क्यों नहीं, यह तो कहो ॥
है पाण्डवोंपर विजय दुःशासन सुसङ्गत सर्वथा।
ले लो दुपट्टे पाण्डवोंके द्रौपदीके भी तथा ॥"

[८४]

पाण्डव सशक्त-सबल यदपि थे, चतुर धीर, न मूढ़ थे।
सुनते दुपट्टे दे दिये, निज धर्मपर आरूढ़ थे ॥
पर द्रौपदी थी एकवस्त्रा, एक साड़ी पास थी।
पहने वही, ओढ़े वही थी, एक प्रभुकी आश थी ॥

[८५]

साड़ी न जब उसने उतारी, शीघ्र दुःशासन उठा।
साड़ी लगा झट खींचने, था पूर्वसे ही वह रुठा ॥
हो आर्त्त दीन पुकार और गुहार वह करने लगी।
लज्जा स्वयं लज्जित हुई, सुन प्रार्थना करुणा-पगी ॥

[८६]

गुरु भीष्म थे चुपचाप जो नीतिज्ञ थे, धर्मज्ञ थे।
जड़तुल्य पाण्डव मौन थे जो रण-कला-मर्मज्ञ थे ॥
करबद्ध आर्त पुकार करती हाय! बारम्बार है।
खुलता किसीका किन्तु अबतक भी नहीं मुंहद्वार है ॥

[८७]

पर-दुःख-कातर वीर पाण्डव धर्मके अवतार थे।
वे थे सहन करते स्वजनतकके न अत्याचार थे॥
चुप हो वही क्यों सह रहे हा! आज शत्रु-प्रहार हैं?।
क्या स्वपतितक दुर्दिन पड़ेपर मौन लेते धार हैं?॥

[८८]

हो आर्त्त करती निस्सहाया बार-बार पुकार है।
पर कौन सुनता बात अबलाकी, गयी वह हार है॥
वह जानती थी जिस सभामें हैं सभी बुड्ढे-बड़े।
सम्भव न चुप्पी साध लेंगे, विपद्-सङ्कटके पड़े॥

[८९]

यदि और सब चुप हो रहेंगे, पति न चुप हो जायंगे।
अरिसे बचाकर वे मुझे बदला सहर्ष चुकायंगे॥
आशा निराशामें हुई परिणत सभी चुपचाप थे।
हतबुद्धि पाण्डव हो रहे थे, सह रहे अरि-ताप थे॥

[९०]

निस्सार इस संसारमें हैं स्वार्थमें सब ही सने।
सङ्कट-समय जब सामने आया सभी चलते बने॥
आशे! महा संहारिणी तेरी सदाकी नीति है।
सुख-स्वप्न दिखला प्राण लेना यह कहांकी रीति है?॥

[६१]

इस बार तेरे जालमें है आय पाञ्चाली पड़ी।
अतएव तू है दे रही शिक्षा बड़ी उसको कड़ी॥
इसको रुला उसको हंसा, उसको रुला इसको हंसा।
तू खेलती है आप, एक-न-एककी गर्दन फंसा॥

[६२]

यह ज्ञात अब है हो गया कुछ भी न तेरे पास है।
आशे! दुराशे! तो न तेरी द्रौपदीको आस है॥
जब और आस-भरोस-आश्रयकी न रहती आश है।
जब टूट जाता मोह-माया-लोभ-मद-भ्रम-पाश है॥

[६३]

जब आय घोर विपत्ति पड़ती याद आते प्रभु तभी।
हैं एक अशरणशरणकी लेते शरण-आश्रय सभी॥
अबला अनाथा द्रौपदी भी अब गयी हा! हार है।
प्रभु-द्वारके अतिरिक्त अन्य खुला न उसको द्वार है॥

[६४]

दे दे दुहाई धर्मकी प्रभु-प्रार्थना सस्नेह की।
थी सजल नेत्र, सभय, उसे सुधबुध नहीं थी देहकी॥
"तिय-जातिका सर्वस्व-भूषण नाथ! केवल लाज है।
रख लीजिये हे लाजपति! वह लाज जाती आज है॥

[६५]

निर्बल-सबल, करि-कीर सब सम आपकी हैं दृष्टिमें ।
मुझसे अनेकों पतित पलते आपकी इस सृष्टिमें ॥
यह दुष्ट दानव-प्रकृति दुःशासन बड़ा बेपीर है ।
सुनता न एक, भरी सभामें खींचता हा ! चीर है ॥

[६६]

हे विश्वबाहो ! आइये, रक्षार्थ हाथ बढ़ाइये ।
पत राखिये मेरी, मुझे अविलम्ब आय बचाइये ॥
अपमान मेरा आपका भी क्या नहीं अपमान है ?
है आपको अर्पण सभी कुछ मान-लज्जा-जान है ॥"

[६७]

की द्रौपदीकी मान-रक्षा धर्मने तत्काल ही ।
सबके समक्ष हुआ उपस्थित एक जादू-जाल* ही ॥
ज्यों-ज्यों लपटता-खींचता है वीर त्यों-त्यों बढ़ रहा ।
क्या रबरका है वस्त्र यह ! आश्चर्य्य था सबको महा ॥

[६८]

पर रबरके विस्तारकी मर्य्याद है होती न क्या ? ।
रूई-रबरके वस्त्रकी पहचान हो सकती न क्या ? ॥
उसने लगायी शक्ति साड़ीको उतार नहीं सका ।
वह खींचते-ही-खींचते था हाँफता मानों थका ॥

---

* इन्द्रजाल ।

[९९]

होने न कपड़ेकी कमी दी, चीर बढ़ता ही गया।
दर्शक सभी विस्मित हुए यह देख कौतूहल नया॥
नारी बनी है चीरकी या चीर नारीका बना।
नारी सनी है चीरमें या चीर नारीमें सना॥

[१००]

थी राशि उन्नत लग गयी,मिलता न उसका अन्त था।
था धर्म आप स्वयं सहायक पुण्य प्राप्य अनन्त था॥
मिलता विपद्‌में है न जब साथी-सहायक एक भी।
है धर्म देता साथ, रखता निर्बलोंका टेक भी॥

[१०१]

पर दुष्ट दुःशासन न अपनी दुष्टता था छोड़ता।
निर्लज्ज नीच न नीचतासे मुंह अभी था मोड़ता॥
यह देख डांट उसे बताने नप लगे चहुं ओरसे।
अब भीम भी चुप रह सके न, गरज उठे अति जोरसे॥

[१०२]

"हे क्षत्रियो! देखो न किञ्चिन्मात्र मेरा दोष है।
इस दुष्टकी यदि दुष्टतापर हो रहा कुछ रोष है॥
मैं शपथपूर्वक कह रहा हूं, भीम मेरा नाम है।
निज वचनपर रहना सुदृढ़ मेरा सदाका काम है॥

[१०३]

यह दुष्ट दुःशासन यहांपर कर रहा जो कर्म है।
उससे हुआ दूषित न मेरा—वरु सुक्षत्रिय धर्म है॥
यदि रक्त-पान करूं न छाती फाड़ इसकी युद्धमें।
पांसा सुजीवनका इसीके पलट दूं न विरुद्धमें॥

[१०४]

जिस हाथसे खींचा वसन-जूड़ा न उसको तोड़ दूं।
हड्डी तथा पसली न उसकी भङ्ग करके छोड़ दूं॥
यदि रक्तसे उसके, खुले ये बाल बंधवाऊं नहीं।
तो विश्वमें मुझको ठहरनेका न ठौर मिले कहीं॥

[१०५]

या वीर गति निज पूर्वपुरुषोंकी न मुझको प्राप्त हो।
निन्दा हमारी भाइयो! फिर विश्वभरमें व्याप्त हो॥"
चिरकाल दुःशासन कुचक्र चला लगा अब हारने।
धृतराष्ट्र-पुत्रोंको सभासद सब लगे धिक्कारने॥

[१०६]

लज्जित हुआ बैठा न दुःशासन तनिक था डोलता।
चुपचाप चोरी बाद ज्यों है चतुर चोर न बोलता॥
तब दूरदर्शी विदुर बोले, "द्रौपदी निर्दोष है।
पाण्डव न उत्तेजित हुए, इसका हमें सन्तोष है॥

[१०७]

अब द्रौपदीसे बोलना अन्यायपर अन्याय है।
यह सोचना अब चाहिये क्या शांति-सुखद उपाय है॥
अन्याय होते देखके चुप बैठ रहना पाप है।
परिणाम भीषण देख होता दुःख-पश्चात्ताप है॥

[१०८]

यह सोचिये,है उचित या अनुचित युधिष्ठिरने किया।
जो द्रौपदीको दांवमें सोचे बिना ही रख दिया॥"
धृतराष्ट्रके भयसे किसीने भी नहीं जब कुछ कहा।
कुरुकेतु बोला द्रौपदीसे, "अब न यह अवसर रहा॥

[१०९]

पूछो स्वपतियोंसे यही तुम प्रश्न, क्या कहते सही।
जो कुछ कहें वे, हर्षपूर्वक मान लूंगा मैं वही॥
'हमपर युधिष्ठरका रहा कोई नहीं अधिकार है।
हमको युधिष्ठिरका किया कुछ भी नहीं स्वीकार है॥

[११०]

रख दांवमें हमको युधिष्ठिरने किया अन्याय है।'
कह दें नकुल-सहदेव-अर्जुन-भीम सहज उपाय है॥
तो फिर तुम्हें दासत्व-बन्धन-मुक्त मैं कर दूं अभी।
अधिकार अपनी विजयका मैं त्याग दूं तुमपर सभी॥"

[१११]

वह चाहता था पाण्डवोंमें वैर-बीज वपन किया ।
पर चतुर पाण्डव चुप रहे,उसको न कुछ उत्तर दिया ॥
वे जानते थे एकमत जबतक रहेंगे पांच ही ।
तबतक न हमपर कौरवोंकी लग सकेगी आंच ही ॥

[११२]

चुप पाण्डवोंको देख दुर्योधन प्रसन्न अथोर था ।
स्थिर दृष्टि करके देखता वह द्रौपदीकी ओर था ॥
रख हाथ बाईं जांघपर इङ्गित तुरत उसने किया ।
'आ, बैठ इसपर' मौनवाणीसे यही हा ! कह दिया ॥

[११३]

गम्भीर गर्जन सिंह-सा कर भीम सहसा कह उठा ।
उस दुष्टके व्यवहार, अपनी हारसे था ही रुठा ॥
"हे नृपतिगण ! मैं युद्धमें जंघा नहीं यह तोड़ दूं !
यदि मैं न इस कामान्धको लङ्गण बनाके छोड़ दूं ॥

[११४]

तो मृत्युके पश्चात् मुझको पितर-लोक न प्राप्त हो ।
हो पुण्य क्षय मेरा सभी, दुष्कीर्त्ति जगमें व्याप्त हो ॥"
यह सुन प्रतिज्ञा भीमकी भयभीत-से सब हो गये ।
आये अनेकों अपशकुनके समाचार नये-नये ॥

[११५]

धृतराष्ट्र बोले, "पुत्र ! तुम करते महान अनर्थ हो।
परनारिसे अपमान-सूचक बात करते व्यर्थ हो॥
फिर द्रौपदीसे यों कहा, "कल्याणि ! तुम धीरज धरो।
जो कष्ट तुमको है हुआ, उसको भुलाओ, कम करो॥

[११६]

मांगो वही वर चाहती हो जो, उसे पूरा करूं।
दुःखित तुम्हारे हृदयकी मैं दाह-ज्वाला सब हरूं॥"
तब द्रौपदी बोली, "द्रवित हैं आप तो यश लीजिये।
'दासत्व-बन्धन-मुक्त पाण्डव हों,' यही वर दीजिये॥"

[११७]

'इच्छा तुम्हारी पूर्ण हो' धृतराष्ट्रने यह वर दिया।
धन-राज्य-रत्नागार पाण्डव लें' यहांतक कह दिया॥
हारा हुआ धन-रत्न ले पाण्डव हुए हर्षित महा।
पर दुष्ट दुःशासन हुआ दुःखित, नहीं हो चुप रहा॥

[११८]

जाकर सुयोधनसे कहा, "जो कुछ इकट्ठा था किया।
दे पाण्डवोंको वृद्ध नृपने हाय ! सब चौपट किया॥
क्रोधान्ध पाण्डव हो रहे हैं, जा रहे हैं घर अभी।
हमने किये अपमान जो वे भूल सकते हैं कभी ?

[११९]

क्या वे बिना बदला चुकाये चुप भला रह जायंगे ?।
तत्काल उनके हाथसे फिर दण्ड हम सब पायंगे ॥
इस वार पाण्डव हाथसे यदि हाय ! निकल गये कहीं ।
तो नाश होगा हम सबोंका, जान लो, संशय नहीं ॥

[१२०]

फिरसे फंसाना चाहिये उनको किसी विधि जालमें ।
बदला चुका न सकें कभी ऐसे कुचक्र-कुचालमें ॥
फिरसे जुआ हो, हार जाये जो करे वनवास वह ।"
यह सोचते ही उठ चले वे शीघ्र ही यह बात कह ॥

[१२१]

कुरुवृद्धके आ निकट यह सब बात दोनोंने कही ।
धृतराष्ट्रने सोचा भली ये बात हैं कहते सही ॥
वे पुत्रवत्सल-भीरु-कायर-वृद्ध थे, मोहान्ध थे ।
पाण्डव सभी इस समय दुर्द्धर हो रहे क्रोधान्ध थे ॥

[१२२]

अतएव इस प्रस्तावपर सहमत परस्पर हो गये ।
हा ! फेंक पांसे दुःखमें दोनों फंसे फिरसे नये ॥
फिर भी शकुनि जीता, पराजय पाण्डवोंकी हो गयी ।
वनवासकी पाण्डव प्रतिज्ञा कर चुके थे हा ! नयी ॥

[१२३]

अतएव तैयारी तुरत करने लगे वनवासकी।
फिर भी हुई इनकी दशा वह पूर्ववत् ही दासकी।
मृगचर्म-वल्कल पहन वे अब खेलघरसे चल पड़े।
फिर भी न दुःशासन हुआ चुप,व्यङ्ग्य वाक्य कहे कड़े॥

[१२४]

"जाती कहां है द्रौपदी! तू, वन न तेरे योग्य है।
पति अन्य चुन ले प्राप्त सामग्री यहांपर भोग्य है॥"
आता इधर, जाता उधर, करता कटाक्ष कठोर था॥
सब भाइयोंके सहित दुर्योधन प्रसन्न अथोर था॥

[१२५]

थे मौन पाण्डव, भाग्य-पांसा पड़ गया प्रतिकूल था।
व्यवहार पर यह कौरवोंका हूल देता शूल था॥
चुप भीम किन्तु न रह सका,बोला,"हंसो या कुछ करो।
समुचित न उत्तर दे अभी,दूंगा कभी, यह लिख धरो॥

[१२६]

क्या शकुनि-दुःशासन—न दुर्योधन सकेगा बच वहां।
करने लगेंगे बाण-वर्षा पांच पाण्डव हम जहां॥
रणभूमि क्षणमें पाट दूंगा कौरवोंको मारकर।
तब मैं हंसूगा मारकर इनको तथा ललकार कर॥

[१२७]

स-व्याज मैं बदला चुकाऊंगा समरमें जान लो।
धृतराष्ट्र-पुत्रोंको अकेले मार दूंगा मान लो ॥
मैं जानता हूं आज दुर्योधन! सवंश मरा तुझे।
इससे नहीं कुछ और कहता, निबल जान नहीं मुझे ॥

[१२८]

यदि बन्धु आज्ञा दें यहीं प्रण पूर्वका पूरा करूं।
हृत्कुण्डकी प्रज्वलित ज्वाला रक्त-जलसे ही हरूं ॥"
क्रोधाग्नि बढ़ती जा रही है भीमकी, यह देखकर।
कहना उसे, करना जिसे है, फलद है न विशेषकर ॥

[१२९]

बोला सुवाणी पार्थ, "भाई! अब न बोलो, चुप रहो।
कौरव, शकुनि या दुष्ट दुःशासन कहें जो सब सहो ॥
वनवास तेरह वर्ष करना है, प्रथम कर लें वही।
फिर बाद जो होगा, उसे सब लोग देखेंगे सही ॥

[१३०]

करता प्रतिज्ञा एक, इच्छा कुछ न कहनेकी रही।
मैं सूत-सुतका रक्त पृथ्वीको पिलाऊंगा सही ॥
हिमगिरि टरे या प्रलयका हो आ उपस्थित ढङ्ग हो।
पर हो नहीं सकता कभी, यह पार्थका प्रण भङ्ग हो ॥

[१३१]

बोले नकुल-सहदेव, "कौरव यमपुरीको जायंगे।
परनारिके अपमानका कटुफल सभी ये पायंगे॥"
बोले युधिष्ठर आ सभामें, "जा रहे हैं हम सभी।
वनवास-अवधि समाप्त कर शायद मिलेंगे फिर कभी॥"

[१३२]

धृतराष्ट्र-विदुर-स्वगुरुजनोंसे ले बिदा पाण्डव चले।
गुरु-विदुर-भीष्माचार्य्यके आशीस लेकरके भले॥
धृतराष्ट्रने पूछा विदुरको देख सहज स्वभावसे।
"पाण्डव विदुर! वनको गये यह तो कहो किस भावसे॥"

[१३३]

बोले विदुर, "राजन्! युधिष्ठिर सिर झुकाये खिन्न थे।
मुंह ढक चले आगे, निराशाके नहीं पर चिह्न थे॥
यदि डाल देते धर्म्मराज कुदृष्टि क्रोधित भावसे।
तो भस्म होता राज्य उनके पुण्य-पुञ्ज-प्रभावसे॥

[१३४]

लम्बी भुजायें देख कहता भीम यह मानों गया।
"इनकी उपस्थितिमें हुई यह दुर्दशा, आती दया॥
भुजदण्ड ये कम्पित करेंगे एक दिन भूखण्डको।
खण्डित-विखण्डित होय कौरव प्राप्त होंगे दण्डको॥"

[१३५]

अर्जुन धनुर्धारी उड़ाता धूल पांवोंसे गया।
ये धूल-कण रण-शूल होंगे देखना जादू नया॥
है बाल खोले मुंह छिपाये द्रौपदी रोती गयी।
थी कह रही मानों विपद है कौरवोंने ली नयी॥"

[१३६]

थी हो रही कुन्ती अनाथा आज पुत्र-वियोगसे।
मृगचर्म उनका देख और विपत्तिके संयोगसे॥
जाते समय वह रो उठी, बोली, "हुई क्या यह दशा!
क्यों धर्म्म-पालक पाण्डवोंकी हो रही यों दुर्दशा!

[१३७]

मिलती महान अनर्थकारी कौरवोंको सम्पदा!
चलते न नीति-विरुद्ध पाण्डव जो, उन्हें यह आपदा!
हा! धर्म्मराज्य विनष्ट हो! यों पापराज्य बढ़े भला!
किस जन्मके इस पूर्व-सञ्चित-पापने पकड़ा गला!

[१३८]

क्रोधी, कुचाली, क्रूर, कामी कौरवोंको राज्य हो!
वनवास हो, इन पाण्डवोंका वस्त्रतक भी त्याज्य हो!
हे न्यायकारी! तू कभी करता नहीं अन्याय है!
तो पाण्डवोंके साथ क्या जो कुछ किया वह न्याय है?

[१३६]

वल्कल पहन वन-वन फिरेंगे धर्म्मराज ! अनर्थ है !!
कौरव करेंगे राज्य ! विधि ! इसका भला क्या अर्थ है ?
तू पापमें सुख, पुण्यमें है दुःख दिखलाता प्रभो !
तो पुण्य कोई क्यों करेगा, कह सही यह तो विभो ! ॥

[१४०]

हा ! सुख करेंगी कौरवोंकी नारियां रहकर यहां ।
यह द्रौपदी वन-वन फिरेगी जाय पतिप्राणा कहां ॥
पर परमप्रभुकी है यही आज्ञा इसे पालन करो ।
बिन दुःख भोगे सुख न होता, ग्रहण यह शिक्षा करो ॥

[१४१]

वन-व्याघ्र कर सकते न कुछ नर-व्याघ्र तुम भी हो सभी ।
बलवानको इस विश्वमें कोई डिगा सकता कभी ?
वन और तुमको सबल कर देगा न कुछ चिन्ता करो ।
वन-शूल होंगे फूल, जाओ, प्रभु-भरोसा बस करो ॥

[१४२]

यह है परीक्षा-काल रहना अटल धर्म्म न छोड़ना ।
सद्कर्म्मसे—सद्धर्म्मसे पुत्रो ! नहीं मुंह मोड़ना ॥
मङ्गल करेगा प्रभु वही सर्वत्र जिसका राज्य है ।
प्रिय हैं सभी जिसके लिये, दीनातिदीन न त्याज्य है ॥

तृतीय परिच्छेद



थे विप्र-पुरजन संग पाण्डव जब चले वनके लिये।
सबसे युधिष्ठिरने कहा घर लौट जानेके लिये॥
लौटे नगरजन, पर न ब्राह्मण, तब युधिष्ठिरने कहा।
"हे पूज्य विप्रो! लौटिये,वन कष्टदायक है महा॥

[१]

भोजन-वसन-धन पास कुछ भी है न, केवल भक्ति है।
पर पेट-पूर्ति-निमित्त आती काम क्या अनुरक्ति है?
हैं कष्टमें हम, किन्तु आप न व्यर्थ कष्ट उठाइये।
आशीस दे मङ्गल हमारा देववृन्द! मनाइये॥"

[२]

तब विप्र बोले, "धर्म्मराज! रहें कहां, जायें कहां।
रहते सुयोधन शकुनि हैं या अधम दुःशासन वहां?
रहता जहां है धर्म, हम भी नृपति रहते हैं वहीं।
है आपके ही साथ धर्म, चलें जहां चाहें कहीं॥

[३]

अबतक खिलाया आपने बारी हमारी है अभी।
हम अन्न-भिक्षा मांग लायेंगे, उऋण होंगे तभी॥
तजि राज-साज नृपेन्द्र! जाते आप वन, न अनर्थ है?
हम जन्म-तापस हैं बना वन तो हमारे अर्थ है॥

[४]

वन-व्याघ्र कुछ सकते बिगाड़ न,आप क्षत्रियवीर हैं।
तो ये कुशायें तीक्ष्णसे-भी-तीक्ष्ण सदृश तीर हैं।"
फिर धौम्य बोले, "मैं पुरोहित हूं, परीक्षा है यही।
हम सब चलेंगे साथ, पूजा सूर्य्यकी कर लो सही॥"

[५]

कर सूर्य्य-पूजा थाल-अक्षय * नृप युधिष्ठिर पा गये।
फिर ब्राह्मणोंके साथ काम्यक वन सभी ही आ गये॥
आ कृष्ण वनमें मिल गये पाण्डव यदपि अति दूर थे।
पाण्डव चले फिर द्वैतवन जहं फूल-फल भरपूर थे॥

---

* पुरोहित धौम्यके आदेशानुसार सूर्य्योपासना करनेपर सूर्य्यदेव स्वयं प्रकट हुए और युधिष्ठिरको अक्षय-स्थाली दी,जिससे मनचाहा नाना प्रकारके सुस्वादु भोज्य पदार्थ प्राप्य थे। इस थालीको पाकर वनमें किसी प्रकारका खानेका कष्ट पाण्डवोंको नहीं हुआ। द्रौपदी पहले ब्राह्मणोंको खिलाकर, फिर पतियोंको खिलाती, तब आप खाती।

[६]

जामुन कदम्ब तमाल ताल सुआम्र कोयल मोर थे।
सर सजल हरित ललित लतायें,शुक अनेक चकोर थे॥
कानन न था–सुर-वाटिका, शोभा नहीं जाती कही।
स्वागत प्रकृति सर्वाङ्गसुन्दर वेशमें थी कर रही॥

[७]

पाण्डव परस्पर बैठ करते विविध वार्तालाप थे।
निज भाग्य-परिवर्तन विषयपर कर रहे परिताप थे॥
इस बीच ही देवर्षि व्यास पहुंच गये संयोगसे।
बोले, "हुआ जो कुछ करो चिन्ता न दैव-कुयोगसे॥

[८]

तपसे प्रसन्न सुरेन्द्र-शिवको पार्थकर दिव्यास्त्र लो।
मिट जाय भावी युद्धका भय प्राप्त कर शस्त्रास्त्र लो॥"
ले विप्र-आशिष, बन्धु-आज्ञा बार-बार मिले गले।
ले पार्थ शर-गाण्डीव-तरकस गिरि हिमालयपर चले॥

[९]

दूरस्थ दुर्गम पार गिरि-पथकर बढ़े कैलाशमें।
'हा कौन ? ठहरो',शब्द-ध्वनि सहसा हुई आकाशमें॥
दुबला जटाधारी तपस्वी एक, देखा, है खड़ा।
उत्तर दिये बिन था नहीं चलना उचित, रुकना पड़ा॥

[१०]

बोला तपस्वी, "शस्त्र बांधे हो व्रती हो क्यों, कहो।
रहते तपस्वी शान्त, तुम शस्त्रास्त्र त्याग यहीं रहो॥
सुख चाहते संसारका वल्कल वसन यह त्याग दो।
यदि इन्द्र-लोक विजय किया हो चाहते धनु त्याग दो*॥"

[११]

सुन पार्थ बोला, "लोभवश आया न इतनी दूर हूं।
सन्तप्त अपने भाइयोंके दुःखसे ही चूर हूं॥
आया यहां दुर्गम-दुरूह-भयद गुफायें पारकर।
हूंगा सुखी मैं बन्धुओंका शीघ्र ही उद्धार कर॥"

[१२]

सुन यह तपस्वी—इन्द्र—बोले, "सब मनोरथ पूर्ण हों।
अर्जुन तुम्हारे मार्गके सब विघ्न-संशय चूर्ण हों॥"
करने लगा अर्जुन तपस्या घोर निरशन नेमसे।
शिव हो प्रसन्न प्रकट हुए, इस पार्थके शुचि प्रेमसे॥

[१३]

दे पाशुपत शिवने इसे उसके प्रयोग बता दिये।
दिव्यास्त्र आकर धर्म-वरुण-सुरेन्द्रने इसको दिये॥
ले पार्थको देवेन्द्र निजपुरको गये, पाण्डव यहां।
सन्तप्त बन्धु-वियोगसे थे, हा! गया भाई कहां॥

---

* तपस्यासे इन्द्रलोक प्राप्त हो सकेगा, धनुषसे नहीं।

[१४]

हो भीम क्रोधोन्मत्त बोला, "बन्धुओ ! तैयार हो।
वन-कष्ट, बन्धु-वियोग, झंझट-सिन्धुसे अब पार हो ॥
ढूंढें प्रथम चल पार्थको, फिर कौरवोंसे युद्ध हो।"
बोले युधिष्ठिर,"बन्धु ! धैर्य्य धरो, न योंही क्रुद्ध हो ॥

[१५]

प्रण पूर्ण कर वनवासका लो, क्रोध-कर्म अधर्म है।
हो सृष्टिका लय हो क्षमा न, क्षमा सनातनधर्म है ॥
पा इन्द्र-आज्ञा पाण्डवोंसे आय लोमश ऋषि मिले।
सम्वाद सुन शुभ पाण्डवों अरु द्रौपदीके मुख खिले ॥

[१६]

दुःखित हुए ऋषि पाण्डवोंके दुःखसे फिर यों कहा।
"कर तीर्थयात्रा, गन्धमादनपर चलो, हो सुख महा ॥"
पर्य्यटन करते आ गये पाण्डव सुतीर्थ प्रभासमें।
बस, कृष्ण-यादव चल पड़े सुन सम्मिलनकी आशमें ॥

[१७]

वन-कष्टसे तन क्षीण, बन्धु-वियोगसे पाण्डव दुखी।
पा स्वजन यादव-कृष्णको हर्षित हुए अति ही सुखी ॥
दुःखित हुए सब वीर यादव देख इनकी दुर्दशा।
बलदेव बोले,"कृष्ण ! हा ! इन पाण्डवोंकी यह दशा ॥

[१८]

हा धर्म ! है धिक्कार ! पहनें धर्मराज भला जटा !
मारे फिरें वन-वन कुपथमें पहनकर वल्कल फटा !"
बोला तुरत सात्यकि, न शोक करो अभी तैयार हो।
हे कृष्ण ! यादवगण ! उठो अब युद्ध-सागर पार हो ॥

[१९]

कर ध्वंस अब धृतराष्ट्र-वंश समूल बदला लें चुका।
करते न धर्म-पुकार-शान्ति-क्षमा रहें रणसे रुका ॥
पाण्डव सुखी अविलम्ब हों अपना पुनः साम्राज्य ले।"
तब कृष्ण बोले,"वे सुखी होंगे न ऐसा राज्य ले ॥

[२०]

जीता हमारा राज्य क्या पाण्डव भला लेंगे कभी।
निज बाहु-बल-अवलम्ब-अवलम्बित सदा रहते सभी ॥
नरसिंह वे निज राज्य लेनेमें स्वयं सुसमर्थ हैं।
परवश प्रतिज्ञा-बद्ध होनेसे हुए असमर्थ हैं ॥"

[२१]

फिर पाण्डवोंसे मिल स्वघर यादव गये, पाण्डव चले।
पर्य्यटन करते, घूमते गिरि, तीर्थ करते सब भले ॥
कर पर्य्यटन आये उसी गिरिपर कुबेर-निवास था।
पहले कुबेर लड़े,प्रसन्न हुए, न फिर भय-त्रास था ॥

[२२]

करने लगे पाण्डव यहीं रहकर प्रतीक्षा पार्थकी।
वे व्यग्र अति ही हो रहे थे सिद्धि देख न स्वार्थकी॥
दिन कल्प सम थे बीतते इनके विरहके शोकमें।
फिर पार्थ आये पांच वर्ष बितायके सुर-लोकमें॥

[२३]

सानन्द, साभूषण, सुखी, सु-स्वस्थ, सास्त्र, बने भले।
पा पार्थको पाण्डव सुखी हो शीघ्र काम्यक वन चले॥
वनवासके दिन शेष इन्होंने बिताये रह यहां।
थे सोचते अज्ञात-वास करें भला लुक-छिप कहां॥

[२४]

बोले युधिष्ठिर,"मत्स्यराज परम हितैषी हैं वहीं।
दिन काट लें, हम दास बन,अन्यत्र जायं नहीं कहीं॥"
सुन पार्थ बोले, "आप होंगे दास, जब हम चार हैं।
यम-यातनासे भी कठिन दासत्व-दुःख-विचार हैं॥

[२५]

थे राजराजेश्वर परम स्वाधीन दास अनेक थे।
था अन्य आप समान और न, आप ही बस एक थे॥
सेवा परायी आपसे क्या हो सकेगी, यह कहें।
हम अब तमावृत गुप्त गृह—गिरि-कन्दरामें चल रहें॥

[२६]

बोले युधिष्ठिर,"बन्धु! घबराओ-न-व्यर्थ अधीर हो।
है समय दुःखद आ गया, काटो इसे तुम वीर हो॥
कितने नृपति भिक्षुक तथा भिक्षुक नृपति बनते सदा।
हो देखते तुम सूर्य्यका उत्थान-पतन न सर्वदा?

[२७]

अवसान होगा बन्धु! दुःखोंका समस्त अवश्य ही।
छोड़े न यदि हम धर्मपथ तो पायंगे सर्वस्व ही॥
बन नृप-सभासद नाम रखके कङ्क ब्राह्मण-वेशमें।
मैं शेष दिन सुखसे बिताऊंगा, इसी ही देशमें॥"

[२८]

"मैं बन रसोइया ही रहूंगा" भीमने उनसे कहा।
"नर्तक-कथिक बन" पार्थ बोला,"मैं सुखी हूंगा महा॥"
बोला नकुल, "मैं अश्व-शिक्षण अस्तबलका भार ले।"
सहदेव बोला, "गो-निरीक्षण-भारका अधिकार ले॥"

[२९]

निज-निज प्रकृति-अनुरूप सबने कार्य्य अपना चुन लिया।
पर क्या करेगी द्रौपदी, इस शोचने चिन्तित किया॥
तब द्रौपदी बोली, "न कुछ मेरे लिये चिन्ता करें।
भगवान मङ्गल आप लोगोंका करें, विपदा हरें॥

[३०]

बीता समय मेरा सदा श्रृङ्गार और संवारमें।
सेवा-सवार करूं, सुदेष्णाके* रहूं अधिकारमें॥"
प्रत्येकने जा एक-एक विराटसे निज मत कहा।
वे इन सरीखे योग्य सेवक पा प्रसन्न हुए महा॥

[३१]

कौरव इधर चिन्तित हुए, हैं जा छिपे पाण्डव कहां।
गिरि-वन चतुर्दिशि दूत जा लौटे निराश, गये जहां॥
रह साथ पाण्डव थे सुखी, यद्यपि विपद् आती रही।
अपमान अनुभव कर रहे थे घोर पग-पगपर सही॥

[३२]

था चाहता कीचक सुतियको† फांसना निज जालमें।
पर भीमने भेजा उसे झट कालके ही गालमें॥
सम्वाद सुन हर्षित-कृतार्थ त्रिगर्तराज हुए महा।
थे मत्स्यराज अमित्र इससे कौरवोंसे आ कहा॥

[३३]

"यदि सम्मिलित आक्रमण कर दें, राज्य-धन-यश प्राप्त हो।
जीवित अभी पाण्डव कहीं हों तो उन्हें भय व्याप्त हो॥"
सहमत हुए कौरव, त्रिगर्त भिड़े विराटनरेशसे।
ले-छीन साठ सहस्र गायें चल पड़े उस देशसे॥

---

* सुदेष्णा विराटनरेशकी पत्नी थीं। † द्रौपदीको।

[३४]

झट मत्स्यराज विराटको पकड़ा त्रिगर्तनरेशने।
दुःखित-द्रवित अब पाण्डवोंको कर दिया इस क्लेशने॥
ले पक्ष स्वामीका लड़े पाण्डव प्रबल उत्साहसे।
अज्ञातवास समाप्त था, थे मुक्त चिन्ता-दाहसे॥

[३५]

चिन्तित हुए कौरव भला ये कौन हैं, क्या बात है।
क्या पाण्डवोंका हो गया अज्ञातवास समाप्त है?
संग्राम घोर हुआ, गिरे कौरव, त्रिगर्त भगे-कटे।
ले जान अपनी ये किसी विधि भग रण-स्थलसे हटे॥

[३६]

कौरव गये घर, आ गये पाण्डव विराटनगर अभी।
उस मत्यराज-विराटसे निज भेद कह डाला सभी॥
आश्चर्य्य-चकित विराटने सम्मान उनका अति किया।
अभिमन्युको दे उत्तराको सब चुका बदला दिया॥

[३७]

फिर व्याह-सजा सजा सुसुख-सम्मान सब जुटने लगे।
फिर पाण्डवोंके भाग्य-भानु चमक उठे दुर्दिन भगे॥
भेजा गया न्योता सुदूर नरेन्द्र सब आने लगे।
शिविराज-काशीराज-द्रुपद ससैन्य सब आये सगे॥

[४२]

दें पांच गांव सप्रेम पांचों भाइयोंको वे तभी।
दिन काट लेवें, पर न रक्त-विरुद्ध हाथ उठे कभी॥"
आ कह सुनायी पाण्डवोंकी मांग वृद्ध-नरेशको।
सहमत हुए सब, पाण्डवोंके सुन सुखद उद्देशको॥

[४३]

पर कर्ण-दुर्योधन-शकुनि तो युद्धपर कटिबद्ध थे।
'भू तो न सूई-नोकभर दें', कह रहे मति-अन्ध थे॥
इसका पता पा कृष्ण-पाण्डव पड़ गये कुछ सोचमें।
बोले युधिष्ठिर,"कृष्ण! अब न पड़ें किसी सङ्कोचमें॥

[४४]

अब युद्ध दिखता अटल, इसके ही लिये तैयार हों।
लड़-कट मरें या स्वाधिकार स्व-राज्य ले रण पार हों॥"
तब कृष्ण बोले, "कौरवोंको जा सुझाऊं मैं भला।
देखूं उन्हें समझाय अन्तिम वार अपनी भी कला॥

[४५]

इस कृष्णके प्रस्तावसे सहमत हुए पाण्डव सही।
पर अब न इनको सन्धिकी कुछ शेष आशा थी रही॥
आ कृष्णने धृतराष्ट्रसे अपनी सुनायी कामना।
"हे भरत-वंश-प्रधान! कुरुवंशावतंस! महामना!

[४६]

कुरुवंश-पाण्डववंश ध्वंस समूल होवे व्यर्थ यों !
कौरव करें हा ! आपके रहते अधर्म-अनर्थ यों !
द्वेषाग्नि बढ़ प्रलयाग्नि होगी भरत-कुल जल जायगा !
सब वीर होंगे भस्म, कहिये हाथ फिर क्या आयगा !!"

[४७]

धृतराष्ट्रने उत्तर दिया, "समुचित कथन है सर्वथा।
पर कृष्ण ! पुत्राधीन हूं, मैं क्या करूं, होती व्यथा ॥"
दी कृष्णने शिक्षा सुयोधनको, हुई वह व्यर्थ ही।
उपदेश स्वार्थ-समक्ष रखता क्या भला है अर्थ ही ॥

[४८]

तब लौट आये कृष्ण बातें पाण्डवोंसे सब कहीं।
"हो पाण्डवो ! युद्धार्थ अब कटिबद्ध, देर करो नहीं ॥"
तब धृष्टद्युम्न प्रधान पाण्डव-सैन्य-सञ्चालक बने।
शस्त्रास्त्र-सज्जित शूर-वीर चले रणस्थलको घने ॥

[४९]

रण-साज कौरव साज भीष्माचार्यको नायक बना।
कुरुक्षेत्र कौरव भी चले दल-बल-गजाश्व लिये घना ॥
अक्षौहिणी थी सात सेना पाण्डवोंके पक्षमें।
अक्षौहिणी ग्यारह खड़ी युद्धार्थ किन्तु विपक्षमें ॥

[५०]

तब वृद्ध कौरव भीष्मने कर सिंह-गर्जन शीघ्र ही।
ऐसे बजायी दुन्दुभी कम्पित हुई सारी मही॥
बैठे महा रथमें तुरत थे श्वेत हय जिसमें जुरे।
श्रीकृष्ण-पाण्डव शंख-रव करने लगे रणबांकुरे॥

[५१]

सुनि तुमुल ध्वनि आकाश-पृथ्वी भी हुई कम्पित महा।
सुन कौरवोंका भी कलेजा तुरत फट जाना चहा॥
यों युद्ध-हित तैयार सारे कौरवोंको देखकर।
आता समय है निकट शस्त्र-प्रहारका यह लेखकर॥

[५२]

कर मेघ-गर्जन पार्थ बोला कृष्णसे यों तड़फड़ा।
"अच्युत! सुरथ यह उभय सेना बीच ला कर दो खड़ा॥
कैसे सुयोधनके समरमें आज बचते प्राण हैं।
खो सत्यपथ दुर्बुद्धिका जो चाहते कल्याण हैं॥

[५३]

झट भीष्म-अर्जुन भिड़ गये घनघोर युद्ध हुआ वहीं।
आचार्य्य-सात्यकि-भीम धनु-टङ्कार थे करते कहीं॥
ज्यों खेत कृषक पका हुआ अति चावसे हैं काटते।
त्यों सैनिकोंको काट भीष्माचार्य्य थे भू पाटते॥

[५४]

दश दिन हुआ यों युद्ध सीमा थी न नर-संहारकी।
सम्भावना थी, भीष्मके जीते न जयकी,—हारकी॥
अतएव पाण्डव-कृष्णने जा भीष्मसे की प्रार्थना।
"लज्जा हमारी आपके है हाथ",की अभ्यर्थना॥

[५५]

बोले पितामह,"मैं तुम्हें करता हृदयसे प्यार हूं।
इन्द्रादिसे भी समरमें सकता नहीं मैं हार हूं॥
था तिय शिखण्डी,पुरुष अब है,यदि मुझे मारे वही।
तो मैं मरूं, उसको न मारूं, जीत जाओगे सही॥"

[५६]

मारे गये इस भांति दुर्जय-अजय भीष्माचार्य्य जब।
वरवीर सेनापति बने रणधीर द्रोणाचार्य्य तब॥
आचार्य्यने दी काट दो अक्षौहिणी सेना वहीं।
दी कृष्णने सम्मति युधिष्ठिरको, "मरेंगे यों नहीं॥

[५७]

सुत-मृत्युका सम्वाद पा सुरपुर चले ये जायंगे।
लो नीतिसे कुछ काम तब हम विजय इनपर पायंगे॥"
करते नहीं थे धर्म्मराज असत्य-कार्य्य कभी सही।
आचार्य्यकी पर मृत्युका था मार्ग एक बचा यही॥

[५८]

योंही हुआ, आचार्य्य भी जब चल दिये सुरलोकको।
कौरव हुए तब प्राप्त करुणा-दुःख-चिन्ता-शोकको॥
फिर कर्ण जिसपर कौरवोंका नित्य रहता गर्व था।
उसके लिये रण-रङ्गका अब आ गया शुभ पर्व था॥

[५९]

जो कर्णने रणमें दिखायी शूरता गम्भीरता।
उसका कथन सम्भव नहीं, थी धन्य उसकी वीरता॥
मारा गया वह भी, भगे कौरव, न कुछ अवलम्ब था।
सेना कटी सारी, पराजयमें न अधिक विलम्ब था?

[६०]

देखा अतुल इन पाण्डवोंकी पाठको! गम्भीरता।
संकल्प धर्म सुनीति दृढ़ता शौर्य्य साहस वीरता॥
उपकारिता शुचिता सुधैर्य्य सुशीलता वह सरलता।
गो-विप्र-सेवा शान्ति क्षान्ति क्षमा मृदुलता प्रबलता॥

[६१]

या धर्म जितना प्रिय उन्हें उतना नहीं प्रिय राज्य था।
निज वचनके रक्षार्थ छोड़ दिया बृहत् साम्राज्य था॥
की धर्मरक्षा पाण्डवोंने धर्मने उनकी तथा।
यह पाठको! भूले न गङ्गाधार-सी-पावन-कथा॥

चतुर्थ परिच्छेद



[१]

मारा गया रण-कुशल धन्वी कर्ण भी जब युद्धमें।
तब खिन्न दुर्योधन हुआ लखि भाग्य-चक्र विरुद्धमें॥
जो कुछ विजयकी आश अबतक शेष थी,जाती रही।
कुरुराजके कुछ शोककी सीमा नहीं जाती कही॥

[२]

आये अनेकों भूप समझाने लगे कुरुराजको।
"राजन्!न हिम्मत हारिये,फिर साजिये रण-साजको॥
होता वही प्रारब्धमें जो कुछ मनुज है धारता।
क्या वीर क्षत्रिय युद्धमें हिम्मत कभी है हारता?"

[३]

कुरुराजको धीरज हुआ गति दूसरी सूझी नहीं।
क्या भाग्यके बिगड़े ठिकाना है भला लगता कहीं?"
अतएव फिरसे युद्ध-हित तैयार सब होने लगे।
फिरसे सुयोधनने बुलाया सैनिकोंको, थे भगे॥

[४]

कुछ सोच उसने सन्य-सञ्चालक बनाया शल्यको ।
वह जानता था वीर्य्य-बल उसके समर-प्राबल्यको ।
हो शल्य सेनापति हुआ हर्षित, कहा, "अच्छा, चलो ।
सेना-सहित उन पाण्डवोंको तात ! आज दलो-मलो ॥

[५]

है पाण्डवोंकी बात क्या यदि देवगण आकर लड़ें ।
कुछ देर भी हमसे, न है सम्भव, समरमें वे अड़ें ॥"
पा बुन्द मुरझायी लता है पनप उठती पुनः ज्यों ।
सुन शल्यके ये वचन दुर्योधन हुआ सोत्साह त्यों ॥

[६]

फिर शल्य धनु-टङ्कार करता युद्ध-हित आगे बढ़ा ।
अरि-सैन्यपर पाण्डव ससैन्य चले,सुतीर-धनुष चढ़ा ॥
जा शल्यने जो शौर्य्य दिखलाया समरमें धन्य था !
घबड़ा उठा हा ! पार्थतक, फिर कौन ऐसा अन्य था ?

[७]

झट मच गया चहुं ओर हाहाकार पाण्डव-सैन्यमें ।
होता यथा है प्रलयकाल-अकाल-विप्लव-दैन्यमें ॥
भिड़ धर्म्मराज सरोष उससे युद्ध तब करने लगे ।
जल-वृष्टि-सी देवेन्द्र-सा वे वाण बरसाने लगे ॥

[८]

सहते रहे आघात दुस्सह, पर नहीं रणसे हटे।
तब शक्ति छोड़ी एक उसके शीघ्र मर्म्मस्थल कटे॥
तब शल्य भूपर सो गया, उसका हुआ हा! अन्त ही।
सेना हुई तब कौरवोंकी तितर-बितर तुरन्त ही॥

[९]

पर शकुनि, दुर्योधन, उलूकादिक वहींपर थे खड़े।
तब शीघ्र पाण्डव सामने ला रथ समर-हित आ अड़े॥
सहदेवने देखा शकुनिको मार प्रण पूरा करें।
अपमानका बदला चुकाकर हृदय-ज्वालाको हरें॥

[१०]

सिर एक शरसे शकुनि-पुत्र उलूकका खण्डित किया।
फिर सुबलसुतको अस्त्र-शस्त्र-प्रहारसे क्रोधित किया॥
बोला,"शकुनि! कु-कृत्य पिछला याद कर अपना अभी।
प्रत्येकका स-व्याज बदला ले चुका मुझसे सभी॥

[११]

वह व्यङ्ग्य वाणी, नाचना, हंसना, तथा अपमान हा!
रह-रह हृदयमें शूल देता, है न तुझको ध्यान हा!"
सहदेवपर फेंका शकुनिने प्रास नामक शस्त्रको।
सहदेवने उसकी भुजायें काट, काटा अस्त्रको॥

[१२]

फिर सिंहगर्जनकर चलाया वाण, वह भूपर गिरा।
अन्याय और अनीतिकी जड़ काट माद्रीसुत फिरा॥
देखा अभी अरि-सैन्यको हैं भीम-अर्जुन काटते।
अरि-रक्तसे भू-प्यास करते दूर शवसे पाटते॥

[१३]

सागर-समान विशाल सेना कट गयी, कौरव भगे।
मारे गये सब वीर दुर्योधन बचा, न रहे सगे।
निज प्राणरक्षा-हेतु दुर्योधन भगा था जा रहा।
संयोगसे सञ्जय मिला, सन्देश यह उससे कहा॥

[१४]

"कहना पितासे छिप सरोवरमें बचाता प्राण है।
कुरुवंशकी अब नाव डूबा चाहती बिन डांड़ है।"
जाकर सरोवरमें घुसा था जल-स्तम्भ बना वहां।
पाण्डव उसे थे ढूंढ़ते, कहते 'सुयोधन है कहां'॥

[१५]

गुरुपुत्र, कृतवर्म्मा तथा कृपको पता इसका लगा।
"धृतराष्ट्र!"सञ्जयने कहा"रण तज सुयोधन है भगा॥"
आये सरोवर-तीर तीनों वीर, सञ्जय साथ था।
कहने पुकार लगे जहां जलमें छिपा कुरुनाथ था॥

[१६]

'राजन्! यहांपर आइये,डरिये न, चल रण कीजिये।
ले राज्य या तो भोगिये या स्वर्ग-रास्ता लीजिये॥"
बोला सुयोधन, "हे महारथियो! थकित मैं हूं बड़ा।
विश्राम करने दो मुझे बस रातभर सरमें पड़ा॥

[१७]

विश्राम जाकर आप भी तुम सब करो इस रातमें।
श्रम-श्रान्ति होवे दूर, नव बल प्राप्त हो कृश गातमें॥
निश्चय करूंगा युद्ध कल मैं साथ ले तुमको सुनो।
जाओ करो आराम, और न वीरगण! सोचो-गुनो॥"

[१८]

ये कर रहे थे बात जब, कुछ व्याध आ निकले वहां।
जो मांस लेकर जा रहे थे, थे सभी पाण्डव जहां॥
वे सब गये यह जान जलमें भाग दुर्योधन छिपा।
सोचा, कहें चल पाण्डवोंसे प्राप्त हो उनकी कृपा॥

[१९]

आ कह सुनायी नृप युधिष्ठिरसे सुखद सारी कथा।
पाण्डव महा हर्षित हुए, उनकी मिटी चिन्ता-व्यथा॥
तत्क्षण वहां चतुरङ्गिणी सेना सहित पाण्डव चले।
सद्कर्म पीछेके किये इन पाण्डवोंके अब फले॥

[२०]

"अब कुफल कौरव पा रहे हैं पाप-अत्याचारका।
परिणाम होता है यही अन्याय-अघ-अविचारका॥
इन पाण्डवोंको देख कृप बोले सुयोधनसे अहो!
पाण्डव यहा हैं आ रहे, जाते सभी हम, तुम रहो॥"

[२१]

कुछ दूर जा ये वीर ठहरे, आ गये पाण्डव वहां।
बोले युधिष्ठिर, "वंशद्रोही! अब छिपे फिरते कहां?
नृपहीन, वीर-विहीन पृथ्वी कर भगे फिरते कहो।
धिक्कार ऐसी वीरताको और तुमको है अहो!

[२२]

जलसे निकल आओ, लड़ो, लो राज्य हमको मारके।
या स्वर्ग जाओ मर हमारे हाथसे अब हारके॥
लगने न वाला है ठिकाना अब कहीं इस लोकमें।
श्रीहीन होकर दास रहना है बुरा नित शोकमें॥"

[२३]

उत्तर दिया उसने, "यहां मिलता हमें विश्राम है।
मैं वीर हूं पाण्डव! न मेरा भागना हा! काम है।
कल युद्ध मैं निश्चय करूंगा रातभर ठहरो कहीं॥
फिर तो तुम्हारा कल पता जगमें लगेगा ही नहीं॥"

[२४]

बोले युधिष्ठिर, "तुम करो चिन्ता हमारी अब नहीं।
चिन्ता हमारी हम करेंगे, तुम लड़ो, निकलो यहीं॥"
'होना तिरस्कृत है न अच्छा, मृत्यु इससे है भली।'
यह सोच जलसे निकल बोला गरज दुर्योधन बली॥

[२५]

"तुम हो ससैन्य-सशस्त्र, मैं निःशस्त्र और अकेल हूं।
पाण्डव तुम्हारे साथ सकता खेल पर रण-खेल हूं॥
चाहो सभी मिल युद्ध करना, यद्पि नीति-विरुद्ध है।
तो भी न पग पीछे धरूंगा, धर्म मेरा युद्ध है॥

[२६]

तुम पार पा सकते नहीं, यदि एक-एक कहीं लड़े।
संशय न पाण्डव! लेश सबको यमपुरी जाना पड़े॥"
यह सुन युधिष्ठिरने कहा, "यह बात सत्य-यथार्थ है।
वर-वीर क्षत्रिय-धर्म करना युद्ध ही धर्मार्थ है॥

[२७]

पर धर्म-बुद्धि गयी तुम्हारी थी कहां, यह तो कहो।
जब तुम सबोंने छीन धनु अभिमन्युको मारा अहो!
पड़ती विपत्ति तभी सभीको याद आता धर्म है।
सम्पत्ति करवाती अनीति-अनर्थ-पाप-अधर्म है॥

[२८]

चलता तुम्हारा अब न बल-पौरुष तथा छल-छन्द है।
परलोक-ईश्वर याद आते, ज्ञान-द्वार न बन्द है॥
अब है नहीं निर्वाह, पहनो कवच, युद्ध करो तथा।
चुन एकको लो हम सबोंमेंसे मिटेगी फिर व्यथा॥

[२९]

यदि एकको भी मार दो तो राज्य अपना जान लो।
हो चुप सभी हम बैठ जायेंगे, कहा यह मान लो॥"
यह सुन युधिष्ठिरपर हुए कुछ कृष्ण क्रोधित-अनमना।
बोले,"बिगाड़ा काम अबतक था युधिष्ठिर! जो बना॥

[३०]

"अर्जुन-नकुल-सहदेव या तुम क्या चलाओगे गदा।
अभ्यास तुमको है न, दुर्योधन चलाता है सदा॥
चुन ले तुम्हें तो फिर कहो होगी तुम्हारी क्या दशा।
है बस तुम्हारे भाग्यमें सुख-राज्य-भोग न, दुर्दशा॥"

[३१]

सुन भीम बोला,"कृष्ण! आप न दुःख-चिन्ता कीजिये।
क्रोधाग्नि मेरी आज बुझ जाने यहींपर दीजिये॥"
इस बीच ही बलराम आ बोले, "न युद्ध करो यहां।
कुरुक्षेत्र है उपयुक्त युद्ध-क्षेत्र शीघ्र चलो वहां॥"

[३२]

आये सभी लेकर गदा, झट गरज दुर्योधन भिड़ा।
बस भीम भी झट भिड़ गया, अति तुमुल युद्ध वहीं छिड़ा॥
गज अरु गजारि लड़े, तड़ातड़ थीं गदायें गिर रही।
चिनगारियां-ध्वनि व्याप्त हो कम्पित हुई सारी मही॥

[३३]

मारी सुयोधनने गदा जब, भीम क्रोधित हो उठा।
निज वज्र-तुल्य गदा सुयोधनपर चलायी, था रुठा॥
अपनी गदा उसकी गदापर मार दुर्योधन बचा।
सबको हुआ आश्चर्य्य, चारों ओर कोलाहल मचा॥

[३४]

कुरुराजने फिर भीमके सिरपर गदा मारी कड़ी।
पर भीम घबड़ाया न, चिन्ता पाण्डवोंको थी बड़ी॥
जब-जब सुयोधनपर चलायी भीमने अपनी गदा।
हर बार ही वह बाल-बाल बचा, न आयी आपदा॥

[३५]

फिर चोट छातीपर लगी, पर भीम घबड़ाया नहीं।
इस बार मार गदा उसे बदला चुकाया झट वहीं॥
हर्षित हुए पाण्डव, प्रशंसा भीमकी होने लगी।
यह सुन सुयोधन बेतरह क्रोधित हुआ, मूर्च्छा भगी॥

[३६]

आघात एक प्रचण्ड उसने भीमपर झट कर दिया।
जो भीम पहना था कवच, झट टूक-टूक उसे किया॥
फिर भी सधैर्य्य अड़ा अखाड़ेमें रहा वह वीर था।
था भीम-जसा भीम ही, रण धीर था गम्भीर था॥

[३७]

तब कृष्ण बोले, "पार्थ! दुर्योधन बड़ा ही है बली।
देखो भला, कैसा गदा-कौशल दिखाता है छली॥
कबतक चलेगा युद्ध यों कह कौन सकता पार्थ! है।
है कौरवोंसे पार पाना कठिन, बात यथार्थ है॥

[३८]

तन वज्र उसका हो गया है पार्थ! मातृ-प्रसादसे। *
है इस समय यह बात बाहर भीमकी पर यादसे॥
हंसता सुयोधन है, गदा दुस्सह यदपि उसपर पड़ी।
है भीम होता व्यथित इसको चोट लगती है कड़ी॥

---

* जन्मान्ध पति पानेके कारण पतिव्रता गान्धारीने अपनी आंखोंपर पट्टी बांध ली थी। अपने ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधनको उन्होंने एक बार पट्टी खोलनेपर नंगा ही देखनेकी इच्छा प्रकट की। कृष्णने देखा कि गान्धारी पतिव्रता हैं, यदि दुर्योधनको सर्वप्रथम पट्टी खोलनेपर देख लेंगी तो उनके प्रेम-दृष्टि-प्रसादसे उसका शरीर वज्र हो जायगा। जब दुर्योधन नङ्गा जाने लगा, तब कृष्णने कहा कि माताके सामने सयाने लड़केको नङ्गा जाना उचित नहीं, कम-से-कम कमरमें ही कुछ लपेट लो। दुर्योधन फूलकी माला लपेट माताके सामने गया। माताने उसे माला लपेटे देखकर बहुत पश्चात्ताप किया, पर अब क्या हो सकता था! दुर्योधनका सारा शरीर तो वज्र हो गया, किन्तु जंघा जैसी-की-तैसी ही रही।

[३९]

"अतएव भीम करे प्रतिज्ञा पूर्ण, कुछ ऐसा करो।
उसकी कराके स्मृति उसे, इस दुष्टका जीवन हरो॥"
यह सुन थपेड़ा मार बाईं जांघपर इङ्गित किया।
झट भीम ताड़ गया इशारा पार्थका अङ्कित किया॥

[४०]

निज पूर्व प्रणकी यादकर अब भीम सजग विशेष था।
पर अरि-प्रहार प्रचण्ड करता था, न डरता लेश था॥
इस ताकमें था भीम कैसे शीघ्र ही प्रण पूर्ण हो।
यह दुष्ट दुर्योधन मरे, मद कौरवोंका चूर्ण हो॥

[४१]

था भीम हो बायें सुयोधनके तमकता-मचलता।
था पैंतड़ा देता कभी, था कूदता वा उछलता॥
करता प्रहार न था स्वयं मानो गया वह हार है।
थे सोचते सब, "भीम बच सकता नहीं इस बार है॥"

[४२]

था भीमको मदमत्त साठ सहस्र हस्ती-बल सही।
थी शक्ति शेष अशेष अब, न विशेष थी चिन्ता रही॥
था सोचता जब वार दुर्योधन करे, मारूं गदा।
दूं तोड़ उसकी जांघ, देखें लोग उसकी दुर्दशा॥

[४३]

झट भीमपर झपटा सुयोधन भीम भी लपटा वहीं।
बच उछल दुर्योधन गया, पर था अछूत बचा नहीं॥
लगते गदा वह भीमकी संभला नहीं, भूपर पड़ा।
हड्डी गयी बस टूट जंघाकी, न हो सकता खड़ा॥

[४४]

रख पैर मस्तकपर कड़ककर भीम बोला रोषसे।
"यह दुर्दशा होती तुम्हारी, बस, तुम्हारे दोषसे॥
कु-दृष्टि पर-तियपर कभी क्या डालते जो आर्य्य हैं?
पर-धन-हरण-अपमानका करते कभी वे कार्य्य हैं?

[४५]

तुमने अनर्थ किये कुफल फिर कौन भोगेगा, कहो।
अपमानका बदला यही अपमान होता है, सहो॥
धन-राज्य-वैभव-बन्धु-बान्धव अब तुम्हारे हैं कहां?
जिनपर बहुत थे गर्व करते, क्यों न वे आते यहां?

[४६]

इस देह नश्वरपर तुम्हें कितना कहो अभिमान था।
हो मौन क्यों, बोलो तुम्हारा यह नहीं अज्ञान था?
जब मौन थे हम, तुम हमें निर्बल निरा थे जानते।
आज्ञा तुम्हारी मानते तो दीन हमको मानते॥

[४७]

हम स्वाधिकार-स्वराज्य और स्व-भाग ही थे मांगते।
निज भागका भी भाग दुर्योधन! न थे क्या त्यागते?
था प्रण किया तुमने, 'सुईकी नोकभर दूंगा नहीं।'
अब तो न तुमको विश्वभरमें ठौर मिल सकता कहीं॥"

[४८]

श्रीकृष्णको ये भीमके दुर्वचन अति अप्रिय लगे।
रोका तुरत ही भीमको, बोले वचन अमृत-पगे॥
"है अधमरा अरि और अब अपमान अनुचित सर्वथा।
चिन्तित-व्यथित है आप, पहुंचाओ न अब इसको व्यथा॥"

[४९]

दुस्सह वचन अरि-बाणसे भी कटु सुयोधनको लगा।
था अर्द्ध मृत वह हो रहा, अभिमान पर था ही जगा॥
बोला, "नहीं निर्लज्ज! आती लाज क्या कुछ भी तुझे?
तेरा इशारा प्राप्तकर ही भीमने मारा मुझे॥

[५०]

जब धर्मयुद्ध न कर सका तब जांघपर मारी गदा।
अन्याय तेरा कृष्ण! याद मुझे रहेगा सर्वदा॥
संहार तुमने है कराया हाय! भीष्माचार्य्यका!
वध है कराया पूज्य शस्त्रविहीन द्रोणाचार्य्यका!

[५१]

क्या कर-कटे भूरि-श्रवाका सिर कटाया! न्याय था?
तूने कटाया कर्णको रथहीन था, अन्याय था॥
अगणित नृपति हा! कट मरे अरु शूर-वीर भले-भले।
अघ-बीज क्या निर्लज्ज रहते हैं बिना कटु फल फले॥"

[५२]

उत्तर दिया तब कृष्णने,"जो कुछ कहा तुमने अभी।
कुरुराज! सोचो, हैं तुम्हींपर घट रही बातें सभी॥
चलना कुपथपर ही तुम्हारी बालपनसे नीति है।
सीखा न तुमने आजतक करना किसीसे प्रीति है॥

[५३]

जो कुछ किया तुमने उसीका है तुम्हें यह फल मिला।
सूखा तुम्हारा भाग्य-पुष्प अकाल जो था अधखिला॥"
वे पाण्डवोंके साथ यह कहकर चले हर्षित वहां।
आनन्द युद्ध-समाप्तिका वे ले सकें जाकर जहां॥

[५४]

कृप-द्रोणसुतको दुःख दुर्योधन-दशापर था बड़ा।
वे दौड़कर आये जहां कुरुराज था मूर्च्छित पड़ा॥
फिर द्रोणसुत बोले,"तुम्हारी क्या हुई हा! यह दशा!
थे इन्द्र-तुल्य पराक्रमी तुम! यों तुम्हारी दुर्दशा!!

[५५]

इस विश्वका सुख-साज सारा सर्वथा निस्सार है !
बस जान पड़ता ब्रह्म सत्य, असार यह संसार है ॥"
यह सुन सुयोधनने कहा,"विधि-गति सुगूढ़ अपार है ।
पाती न मानव-बुद्धि तुच्छ रहस्यका उस पार है ॥

[५६]

हम जानते हैं, नाचती है मृत्यु सिरपर सर्वदा ।
है देह क्षणभङ्गुर वृथा सुख-राज-भोग सुसम्पदा ॥
विधि-नियम हैं लागू सभी छोटे-बड़ेपर एकसे ।
वे टल नहीं सकते किये पर भी प्रयत्न अनेकसे ॥

[५७]

इसका नहीं कुछ सोच, वरु है हर्ष ही मुझको बड़ा ।
है पीठ दिखलायी न मैंने युद्धमें मरना पड़ा ॥
इससे न बढ़कर गर्वकी कुछ बात भाई अन्य है ।
युद्धाग्निमें जो होम करता देह क्षत्रिय, धन्य है ॥

[५८]

पाण्डव बिना छल-कपटके हमको हरा न कभी सके ।
हे वीरवर ! नीतिज्ञ कृष्ण कहो भला कैसे छके ॥
क्या दोष है यदि हम न जीत सके विधाता वाम है ।
मुझको मिलेगा स्वर्ग निश्चय,शोकका क्या काम है ?"

[५९]

सुन द्रोणसुत गम्भीर गर्जन कर उठा, बोला, "चलें।
बदला चुका अन्यायका अरि-सैन्यको कुचलें-मलें॥"
काली निशा थी, चल पड़े पर अरि-शिविरकी ओर वे।
झट काल-सम आकर लगे रण-युद्ध करने घोर वे॥

[६०]

दो द्वारपर थे, द्रोणसुत भीतर भ्रमण था कर रहा।
पाञ्चाल-पाण्डव सो रहे थे शिविरमें सुखसे महा॥
देखा सुशय्यापर पड़ा है धृष्टद्युम्न, उसे जगा।
भू पर पटक उसको वहीं उससे लिपट लड़ने लगा॥

[६१]

पशु-तुल्य वध उसका किया, फिर द्रोणसुत आगे बढ़ा।
पाञ्चाल लोगोंपर सहज था क्रोधका पारा चढ़ा॥
आया जहां थे सो रहे पाञ्चाल, वे भी उठ पड़े।
पर अधजगे थे, देरतक उसके समक्ष नहीं अड़े॥

[६२]

कृप और कृतवर्मा उन्हें, जो भागते थे, काटते।
अरि-सैन्यसे ये वीर पृथ्वीको प्रलय-से पाटते॥
फिर द्रौपदीके पुत्र पांचों झट सरोष उठे लड़े।
आचार्य्यसुतके सामने वे किन्तु रह न सके खड़े॥

[६३]

अति घोर हाहाकार-कोलाहल मचा चहुं ओर था।
गज-अश्व थे चिंघाड़ते, तम-मेघ छाया घोर था॥
गज-अश्वसे कुचले गये, कितने मरे, कितने कटे।
लड़-कट मरे कितने परस्पर, पर न पीछेको हटे॥

[६४]

इस बीच कृत*ने शिविरमें ही दी लगा झट आग भी।
जलने लगा वह बच न सकता था, न कोई भाग भी।
थे कुशल कृष्ण न शिविरमें उस, या धनुर्धर पार्थ था।
इस हेतु ही आचार्य्यसुतका सफल होता स्वार्थ था॥

[६५]

अरि-सैन्यका संहार कर वे वीर लौट चले वहां।
आये तुरत कुरुराज था घायल-अचेत पड़ा जहां॥
देखा सुयोधन लोटता है, अन्तकाल समीप है।
अब शीघ्र उसका चाहता बुझना सुजीवन-दीप है॥

[६६]

चहुं ओर गीदड़-गृद्ध-कुत्ते पास ही थे झांकते।
सब लोभवश घेरे उसे, उस ओर ही थे ताकते॥
लखि धैर्य्य खो ये रो पड़े, तीनों हुए व्याकुल महा।
करने विलाप लगे सुयोधनसे न कुछ जाता कहा॥

---

* कृतवर्म्मा

[६७]

"रे! काल क्रूर-कराल कठिन-कठोर तेरा जाल है!
शतरञ्जसे भी अधिक तेरी कुटिल-टेढ़ी चाल है!!
जो राजराजेश्वर अभी थे, शोभता सिर छत्र था!
छाया हुआ जिसका प्रबल आतङ्क-भय सर्वत्र था!!

[६८]

नृपवर असंख्य जिसे सतत सादर नवाते शीस थे!
देते जिसे राजस्व भारतके समस्त महीश थे!!
थे इन्द्र थहराते स्वयं जिसके धनुष-टङ्कारसे!
था भीम मूर्च्छित हो गया जिसकी गदाकी मारसे!!

[६९]

वन-वन फिरे पाण्डव, बने हा कृष्ण पाण्डव-सारथी!
थरथर सभय थे कांपते जिससे अनेक महारथी!!
उसकी दशा यह हाय! घेरे आज गीदड़-गृद्ध हैं!
दुर्दैव! तेरे लिखित अङ्क अवश्य होते सिद्ध हैं!!

[७०]

था इत्र और फुलेल चूता सर्वदा जिस देहसे!
है रक्त उससे ही प्रवाहित आ रहा ज्यों मेहसे!!"
"मित्रो! हमें अब शोक करनेका नहीं अवसर रहा।
है अतिथि कुछ क्षणका सुयोधन" द्रोणसुतने यों कहा॥

[७१]

"अब चाहिये देना विजय-सम्वाद भी इस कालमें।
उठ जाय हर्ष-तरङ्ग इसके शीघ्र ही हृत्तालमें॥
बोला,"सुखद सम्वाद राजन्! एक यह सुन लीजिये।
फिर आप सुखसे ही महाप्रस्थान अपना कीजिये॥

[७२]

पाञ्चाल-पाण्डवसैन्य मेरे टिक सका न समक्षमें।
हैं पांच पाण्डव, कृष्ण, सात्यकि शेष पाण्डव-पक्षमें॥
प्रण जो किया था आपसे उसको किया यों पूर्ण है।
सब पाण्डवोंका गर्व मैंने कर दिया अब चूर्ण है॥

[७३]

जा स्वर्ग-सुख भोगें यहांको कुछ न अब चिन्ता करें।
भगवान सब विधि आपका मङ्गल करें, सङ्कट हरें॥
चिन्तित न हों, आकर मिलूंगा स्वर्गमें मैं जानिये।
आ पाण्डवोंकी मृत्युका सम्वाद दूंगा, मानिये॥"

[७४]

यह सुन हुआ पुलकित सुयोधन,मौन वाणीसे कहा।
"जय हो तुम्हारी,क्लेश मुझको अब नहीं कुछ भी रहा॥"
यह कह सुयोधन चल दिया हर्षित विजयके मोदमें।
जाते जहां हैं एक दिन सब, कालकी जिस गोदमें॥

* इति *